पण्डितमधुसूदनओझा-ग्रन्थमाला–१६

समीक्षाचक्रवर्तिश्रीमधुसूदनओझा-विरचितम्

पुराणनिर्माणाधिकरणम्

हिन्दीभाषानुवादसहितम्

पण्डितमधुसूदनओझाशोधप्रकोष्ठः
संस्कृतविभागः
जयनारायणव्यासविश्वविद्यालयः, जोधपुरम्

'पुराणनिर्माणाधिकरणम्' आपके कर-कमलों में है। वेदमन्त्रों में दृष्ट 4 प्रधान विषयों—1. यज्ञ 2. विज्ञान 3. इतिहास तथा 4 स्तोत्र अथवा स्तुति—में तृतीय इतिहास के साथ यह विषय सम्बद्ध है। यह विषय चतुष्टय ही वेद में प्रमुख रूप से है तथा प्राधान्येन निरूपणीय है, यह ओझाजी का प्रतिज्ञा वाक्य है जो इस रूप में अनेकत्र दोहराया गया है—

यज्ञोऽथ विज्ञानमथेतिहासः स्तोत्रं
तदित्थं विषया विभक्ताः।
वेदे चतुर्धा त इमे चतुर्भिर्ग्रन्थैः
पृथक्कृत्य निरूपणीयाः॥

अथ के स्थान पर च, तथा स्तोत्रं के स्थान पर स्तुतिः जैसे तनिक से परिवर्तन के साथ यह सङ्कल्प-वाक्य ब्रह्मसिद्धान्त, ब्रह्मविनय तथा दशवादरहस्यम् आदि में पढ़ा गया है।

इतिहास के साथ ही पुराण को प्राचीन वाङ्मय में नित्यसहचर द्वन्द्व के रूप में लिया गया है, अतः किसी एक के ग्रहण से दूसरे का ग्रहण स्वतः हो जाता है।

विषय के महाग्रथन स्वरूप को बताते हुए ओझाजी का लेख है—पुराण समीक्षाग्रन्थस्य विश्व-विकासाभिधानस्य 1. पुराणोत्पत्तिप्रसङ्गाभिधेसन्दर्भे-पुराणशास्त्रीय-ज्ञानम्। यह 'पुराणोत्पत्तिप्रसङ्ग' नाम के ग्रन्थ का प्रथम वाक्य है। 'विश्वविकास' नाम के अथवा विश्वविकास का अभिधान=कथन-करने वाले के ये दोनों अर्थ प्रासङ्गिक है और इसी अभिप्राय को लेकर 'पुराण समीक्षा' के साथ अन्वित हैं। पुराण सृष्टि का घटक तत्त्व भी है तथा इस विषय का बोधकशास्त्र भी है, समीक्षा दोनों की ही अभीष्ट है, फलस्वरूप इस वाक्य के दो अभिप्राय हैं, सृष्टि घटक तत्त्व की सर्वतोभावेन विश्वग्रथन परक दर्शन प्रक्रिया, जिसे विश्वविकास नाम से व्यवहृत किया जा सकता है, उस पुराण के उद्भव प्रसङ्ग मात्र को देखना तथा उसका कथन करना, इन दोनों अभिप्राय में पुराण-ब्रह्माण्ड के शास्ता का पुराणशास्त्र नाम से पहिचानने का यत्न 'पुराणशास्त्राभिज्ञान' है।

पण्डित-मधुसूदन-ओझा-ग्रन्थमाला—१६

प्रधानसम्पादकः
प्रोफेसर (डॉ.) प्रभावती चौधरी
निदेशकः
पण्डितमधुसूदनओझाशोधप्रकोष्ठः
संस्कृतविभागः
जयनारायणव्यासविश्वविद्यालयः, जोधपुरम्

समीक्षाचक्रवर्तिश्रीमधुसूदनओझा-विरचितम्

पुराणनिर्माणाधिकरणम्

हिन्दीभाषानुवादसहितम्

अनुवादकः
डॉ. छैलसिंह राठौड़ः
संस्कृतविभागः, जयनारायणव्यासविश्वविद्यालयः, जोधपुरम्

सम्पादकः
पण्डित अनन्त शर्मा
अध्यक्ष; भट्टमथुरानाथशास्त्रिसाहित्यपीठ
जगद्गुरुरामानन्दाचार्यराजस्थानसंस्कृतविश्वविद्यालयः, जयपुरम्

पण्डितमधुसूदनओझाशोधप्रकोष्ठः
संस्कृतविभागः
जयनारायणव्यासविश्वविद्यालयः, जोधपुरम्

२०१३

► प्रकाशक :
पण्डित मधुसूदन ओझा शोधप्रकोष्ठ
संस्कृतविभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर

► **आईएसबीएन : 978-93-82311-31-7**

► **प्रथम संस्करण**, 2013

► मूल्य : ₹ 370.00

► मुद्रक :
रॉयल पब्लिकेशन
शक्ति कॉलोनी, गली नं. 2
लोको शेड रोड, रातानाडा, जोधपुर-342011
मोबाइल : 9414272591
E-mial : rproyalpublication@gmail.com

► प्राप्तिस्थान :
निदेशक
पण्डित मधुसूदन ओझा शोधप्रकोष्ठ
(प्रशासनिक भवन, नया परिसर)
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर-342001 (राजस्थान)

Pandit Madhusudan Ojha Series-16

Chief Editor

Prof. (Dr.) Prabhawati Chowdhary

Director

Pandit Madhusudan Ojha Research Cell

Department of Sanskrit

J.N. Vyas University, Jodhpur

Samīkṣācakravartī Madhusudan Ojha's

Purāṇanirmāṇādhikaraṇam

(Along with Hindi translation)

Translated by

Dr. Chhail Singh Rathore

Department of Sanskrit, J.N. Vyas University, Jodhpur

Edited by

Pandit Anant Sharma

Chairperson, Bhattamathuranathshastrisahityapeeth

Jagadguru Ramanandachariya Rajasthan Sanskrit University, Jaipur

Pandit M. S. Ojha Research Cell

Department of Sanskrit

J.N. Vyas University, Jodhpur

2013

► *Published by :*

Pandit M.S. Ojha Research Cell

Department of Sanskrit
J. N. Vyas University
Jodhpur-342 001 (Rajasthan)

► **ISBN : 978-93-82311-31-7**

► First Edition : **2013**

► Price : ₹ **370.00**

► *Printed by :*

Royal Publication

18, Shakti Colony, Gali No. 2
Loco Shed Road, Ratanada, Jodhpur-342011
Mobile : 094142-72591
E-mail : rproyalpublication@gmail.com

► *Can be had of :*

Director

Pt. M. S. Ojha Research Cell

(Administrative Block, New Campus)
J.N. Vyas University
Jodhpur-342 001 (Rajasthan)



वेदविद्यासमुद्धारकस्वर्गीयपण्डितमधुसूदनशर्म्ममैथिलाः

पुरोवाक्

परम प्रसन्नता का विषय है कि जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर के पण्डित मधुसूदन ओझा शोध प्रकोष्ठ द्वारा प्रवर्तित ग्रन्थमाला के षोडशपुष्प के रूप में वेदरहस्योद्घाटनप्रवण समीक्षाचक्रवर्ती विद्यावाचस्पति पण्डित मधुसूदन ओझा के पुराणसमीक्षा के तीन महाग्रन्थों के अन्तर्गत 'पुराणनिर्म्माणाधिकरणम्' नामक ग्रन्थ का सानुवाद प्रकाशन सम्पन्न हो रहा है। वेद एवं ब्राह्मणों के गूढ़ार्थ को विद्वज्जनों के समक्ष इतिहास एवं पुराण द्वारा ही अनावृत किया जाना संभव है। वर्तमान अध्ययन-परम्परा में पुराणशास्त्रों का पठन-पाठन सर्वथा नगण्य सा रहा है ऐसे समय में प्रकोष्ठ द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक अपने विषय माहात्म्य द्वारा अनायास ही विद्वज्जनों द्वारा शिरोधार्य होगी, ऐसी मेरी शुभाशंसा है।

पण्डित मधुसूदन ओझा द्वारा वैदिक वाङ्मय के प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से किए गए चतुर्धा विभाग में तृतीय विषय के रूप में प्रतिपादित इतिहास से पुराण का भी ग्रहण हो जाता है। इस पुराण-समीक्षा में 'पुराणनिर्म्माणाधिकरणम्' एवं 'पुराणोत्पत्तिप्रसङ्गम्' ग्रन्थद्वय में से 'पुराणनिर्म्माणाधिकरणम्' पुराणरहस्यवेत्ता पुराणपुरुष पण्डित श्री अनन्त शर्म्मा के समालोचनात्मक विस्तृत सम्पादकीय के साथ प्रकाशित होने से सहज ही विबुधजनों के मानसमराल को आप्यायित करेगा।

अपने कुशल सम्पादन, विस्तृत एवं वैदुष्यपूर्ण सम्पादकीय से पण्डित श्री अनन्त शर्मा ने पुराणों के माहात्म्य एवं वेदानुशीलन में उसकी अनिवार्यता का दिग्दर्शन कराया है एतदर्थ संस्कृत विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय उनका आधमर्ण्य स्वीकार

करता है।

पण्डित मधुसूदन ओझा शोध-प्रकोष्ठ की निदेशक प्रोफेसर प्रभावती चौधरी को मैं हार्दिक बधाई देता हूँ जिन्होंने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के समालोचनात्मक संस्करण के प्रकाशनार्थ अपेक्षित सम्पूर्ण प्रक्रिया को परिश्रम एवं उत्साहपूर्वक सम्पन्न किया है। संस्कृत विभाग में पूर्व अतिथि-शिक्षक डॉ. छैलसिंह राठौड़ ने 'पुराणनिर्म्माणाधिकरणम्' के भाषानुवाद का श्रमसाध्य कार्य सम्पन्न किया है अतः वे धन्यवादार्ह है।

यह प्रसन्नता का विषय है कि इससे पूर्व भी शोध-प्रकोष्ठ पन्द्रह पुस्तकों का सानुवाद, सटिप्पण प्रकाशन कर चुका है। मैं आशान्वित हूँ कि प्रकाशन की इसी कड़ी में 'पुराणोत्पत्तिप्रसङ्ग' भी भाषानुवाद एवं समालोचनात्मक सटिप्पण शीघ्र ही प्रकाशित होगा तथा पण्डित मधुसूदन ओझा शोध-प्रकोष्ठ की यह साधना अनवरत वेदविद्या के महायज्ञ के अनुष्ठान में अपनी आहुति प्रदान करती रहेगी।

प्रो. (डॉ.) भँवरसिंह राजपुरोहित
कुलपति
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

श्रीपरमात्मने नमः

प्रधान सम्पादकीय

ॐ हिरणमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्म्माय दृष्टये।।

वेदविद्यानिधान समीक्षाचक्रवर्ती विद्यावाचस्पति पण्डित मधुसूदन ओझा विरचित 'पुराणनिर्म्माणाधिकरणम्' नामक यह ग्रन्थ 'पण्डित मधुसूदन-ओझा-ग्रन्थमाला' के षोडश पुष्परूप में माधुसूदनी विद्या-विवेचन में विचक्षण पुराणप्रिय पुराणसमीक्षक पण्डितवर्य श्रीमदनन्तशर्म्मा के सम्पादकत्व में अतिवैदुष्यविलसित-विस्तृत सम्पादकीय के साथ विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत है।

वेदविद्यावारिधि गीर्वाणवाणीविशारद पण्डितमधुसूदन ओझा एवं उनके अनन्य शिष्य वेदविद्यासमुद्धारक वेदवाचस्पति पण्डित मोतीलाल शास्त्री ने इतिहास एवं पुराण को अपने विज्ञानभाष्य में अत्यधिक महत्त्व दिया है तथा पुराणों के आख्यानों, उपाख्यानों तथा गाथाओं को वेदों से भी प्राचीन माना है। यहाँ तक कि इनके मत में 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' की घोषणा करने वाले भगवान् बादरायण किस वेद का इतिहास-पुराण से उपबृंहण करने की ओर सङ्केत कर रहे हैं—"हमारी स्वल्पमति के अनुसार 'वेदम्' से मुख्यरूपेण वेद का आधिदैविक सृष्टिविज्ञान-व्याख्यारूप ब्राह्मण भाग ही अभिप्रेत होना चाहिए"—क्योंकि

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ।।

(शतपथ ब्राह्मण–हिन्दी-विज्ञानभाष्य, प्रथम खण्ड, भूमिका, पृ. ८७)

अर्थात् पुराण ब्रह्मा के मुख से पहले निकले अनन्तर वेद निकले। पण्डित मोतीलालजी शास्त्री तुमुल घोषणा करते हैं कि पुराणशास्त्र के पारिभाषिक स्वाध्याय के बिना ब्राह्मण-साहित्य का पारिभाषिक तत्त्वार्थबोध सर्वथा असम्भव है। किन्तु पुराणोक्त आख्यानों- उपाख्यानों से सम्बन्ध रखने वाले विचित्र एवं असंभव प्रतीत होने वाले कथनोपकथनों से युक्त परिभाषाओं का समन्वय केवल पुराणवाचन से सम्भव नहीं है, अपितु हमें बुद्धि के चिन्तनधर्म्म एवं मति के

मननधर्म की एकतानता से इन रहस्यों को अनावृत करना होगा। इसी समाधान परम्परा का भगवान् वेद भी स्पष्ट निर्देश कर रहे हैं—

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचं, उत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्ये उशती सुवासा॥

(ऋग्वेद १०/७१/४)

इसका तात्पर्य है कि कतिपय अध्ययनशील विद्वान् इस परम्परा को समलंकृत कर रहे हैं, किन्तु कतिपय अन्य इन मन्त्रों के अर्थों पर दृष्टि डालकर भी देखने से वञ्चित रह जाते हैं, कुछ अन्य विद्वान् इस वाग्देवी के स्वरूप श्रवण से भी पराङ्मुख प्रतीत होते हैं। कुछ ऐसे आत्मनिष्ठ आर्षमानव हैं जिनके लिए वाग्देवी स्वयं अपने सम्पूर्ण स्वरूप को उसी प्रकार प्रकट कर देती है जैसे पतिव्रता पत्नी अपने स्वरूप को पति के समक्ष।

पुराणशास्त्र अपनी आख्यानोपाख्यानान्विता इतिवृत्तशैली से सुप्रसिद्ध है जैसा कि सुख्यात पुराणवचन है—

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे भगवान् बादरायणः॥

भगवान् बादरायण ने ही वेदसंहिताओं एवं पुराणसंहिताओं का संकलन किया—वेदसंहिताओं के संकलन से वे 'वेदव्यास' एवं पुराणों के संकलन से पुराणपुरुष संज्ञा से अभिहित हुए।

पुराणों के समन्वय के बिना ब्राह्मण ग्रन्थों को समझना अकल्पनीय है। मैक्समूलर महोदय द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थ विषयक अधोलिखित मत उनकी अज्ञानता का ही सूचक है—

"The Brahmanas represent no doubt a most interesting phase in history of Indian minds but judged by themselves as literary productions they are most disappointing......................These works deserve to be studied as the physician studies twaddle of idiots and the raving madness."

मैक्समूलर ने अपने 'संस्कृत-साहित्य का इतिहास' नामक निबन्ध में ३८९ पृष्ठ पर अपने आवेश को इन उद्गारों में प्रकट कर इन ग्रन्थों के प्रति अपनी अल्पज्ञता का ही परिचय दिया है। पण्डित मोतीलाल शास्त्री ने शतपथ ब्राह्मण के प्रथम खण्ड की भूमिका में मैक्समूलर के मत का उल्लेख करते हुए वेद-ब्राह्मणों के रहस्य को समझने के लिए पुराणों के अनुशीलन पर बल दिया है एवं पुराणसमीक्षान्तर्गत विरचितग्रन्थों के साथ पुराणों की प्राचीनता की ओर भी वेदविशेषज्ञों का ध्यानाकर्षण किया है तथा वेद संहिताओं के सदृश पुराण संहिताओं का संकलन ही स्वीकार किया है। वेदों के समान पुराण भी ईश्वरीय ज्ञान है, वेदव्यास पुराणसंहिता के संकलनकर्त्ता है रचयिता नहीं। प्रमाणरूप में पण्डित मधुसूदन ओझा द्वारा 'पुराणनिर्म्माणाधिकरणम्' में दिए गए उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

मत्स्यपुराण— **पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।**
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥१॥
पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनघ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥२॥
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तपो नृप।
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते ॥३॥

उक्तश्च बृहन्नारदीयेऽपि—
ब्रह्माण्डं च चतुर्लक्षं पुरात्वेन पठ्यते।
तदेव व्यस्य गदितमत्राष्टादशधा पृथक् ॥१॥
पाराशर्य्येण मुनिना सर्वेषामपि मानद।
वस्तु दृष्ट्वाथ तेनैव मुनीनां भावितात्मनाम् ॥२॥

चार लाख श्लोकों का 'ब्रह्माण्ड पुराण' ही पुराण नाम से जाना जाता है उसी ब्रह्माण्ड पुराण को व्यास पद्धति से अट्ठारह भागों में पृथक् किया गया है (१) ब्राह्म (२) पाद्म (३) वैष्णव (४) शैव (५) भागवत (६) नारदीय (७) मार्कण्डेय (८) आग्नेय (९) भविष्यत् (१०) ब्रह्मवैवर्त (११) लैङ्ग (१२) वाराह (१३) स्कन्द (१४) वामन (१५) कौर्म (१६) मात्स्य (१७) गारुड़ (१८) ब्रह्माण्ड पुराण—इन्हीं अट्ठारह पुराणों की संज्ञा महापुराण है।

पण्डित मोतीलाल शास्त्री—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता ॥

इस श्लोक से पुराणों का प्रवचन और श्रवण वेदसंहिता तथा ब्राह्मणों से पूर्व मानते हैं, रचना नहीं, परन्तु यहाँ विचारणीय है कि पण्डित मधुसूदन ओझा ने 'पुराणानिर्म्माणाधिकरणम्' के प्रारम्भ में ही इस श्लोक को ब्रह्माण्डपुराण से सम्बन्धित मानते हुए कहा है—"अथैतत्कतिपयमन्त्रब्राह्मणग्रन्थाविर्भावकालादपि पूर्वं तत्समकालमेव वा आसीदेको ब्रह्माण्डपुराणाख्यो वेदविशेषः सृष्टि-प्रतिसृष्टि-निरूपणात्मा" इदं वा अग्रे नैव किञ्चिदासीदित्यादिनोपक्रान्त इति विज्ञायते। तत्परतयैव च "ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासःपुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानानि व्याख्यानानीति" शतपथब्राह्मणादिवचनान्तर्गतं पुराणपदमुपनीयते।"

पण्डित ओझा के अनुसार ब्रह्माण्ड पुराण का वेदसे पूर्व अथवा वेद के समकाल में प्रवचन और श्रवण ही नहीं अपितु निर्माण भी हो गया था।

ग्रन्थ के सम्पादकत्व का विशिष्ट दायित्व निर्वहन करने के साथ ही पण्डितवर्य श्री अनन्त शर्मा ने वैदुष्यपूर्ण सम्पादकीय एवं मूलपाठ के शुद्धीकरण का कार्य सम्पन्न करके इस

ग्रन्थ को विद्वज्जनों के मध्य परमादरणीय एवं अतिमहत्त्वपूर्ण बना दिया है। यह कार्य अत्यन्त श्रमसाध्य एवं अवहितचित से ही संभव था एतदर्थ ओझा शोध प्रकोष्ठ सदैव उनका ऋणी रहेगा। इसी माधुसूदनी विद्या के पथिकृत् विद्वानों को मेरा कृतज्ञतापूर्वक नमन है। इनमें सर्वप्रथम स्मरणीय राजस्थान पत्रिका के संस्थापक देवलोकवासी श्री कर्पूरचन्द्र जी कुलिश हैं जिनके सत्संकल्प एवं अथक प्रयासों से पण्डित मधुसूदन ओझा की अमूल्य कृतियों को विद्वानों के हस्तगत करवाने का परमपवित्र कार्य प्रतिफलित हो पाया। इन्हीं विद्वानों में अग्रगण्य परमादरणीय गुरुवर्य आचार्य दयानन्द भार्गव (तत्कालीन अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर) द्वारा सरल एवं सहज शैली में प्रस्तुत किए इस गूढ़ विषय के प्रति मत्सदृश संस्कृताराधकों को प्रेरित किया। कृतज्ञता की इसी परम्परा में मैं ओझा शोध प्रकोष्ठ के पूर्व निदेशक राष्ट्रपति-सम्मानित प्रोफेसर गणेशीलाल सुथार को शत-शत नमन करती हूँ जिन्होंने 'एकमेवाद्वितीयम्' रहते हुए भी प्रकोष्ठ को सुव्यवस्थापित एवं सुसञ्चालित करते हुए इस धरोहर को संरक्षण प्रदान किया एतदर्थ संस्कृतविभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर सदा उनका ऋणी रहेगा। मैं पण्डितवर्य अनन्त शर्मा एवं आन्वीक्षिकी विद्याविशारद मेरे गुरुवर्य प्रो. गणेशीलाल सुथार के उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन की मङ्गल कामना करती हूँ।

डॉ. छैलसिंह राठौड़ ने भाषानुवाद समय पर सम्पन्न करके इस प्रकाशन कार्य को न केवल हल्का किया अपितु प्रकोष्ठ के अन्य कार्यों में भी निष्ठापूर्वक पूर्ण सहयोग किया एतदर्थ मैं उन्हें साधुवाद देती हूँ तथा उनके समुज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

प्रकृत शोध प्रकोष्ठ के परामर्शदातृमण्डल के अध्यक्ष एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष प्रो. सत्यप्रकाश दुबे के प्रति मैं हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने ग्रन्थ के शुद्ध एवं निर्दुष्ट मुद्रण व प्रकाशन हेतु निरन्तर प्रेरित कर मेरा उत्साहवर्धन किया है।

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय के कुलपति एवं पण्डित मधुसूदन ओझा प्रकोष्ठ के परामर्शदातृमण्डल के संरक्षक परमादरणीय प्रो. भंवरसिंह जी राजपुरोहित के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनका सत्परामर्श एवं ऊर्जस्विता मुझे सदैव प्रकोष्ठ की प्रगति हेतु उत्साहित करती है।

इति शम्

प्रो. (डॉ.) प्रभावती चौधरी
निदेशक, पण्डित मधुसूदन ओझा शोधप्रकोष्ठ
आचार्य, संस्कृतविभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

ता. ०७-१२-२०१३

सम्पादकीय

'पुराण निर्माणाधिकरणम्' आपके कर-कमलों में है। वेदमन्त्रों में दृष्ट ४ प्रधान विषयों—१. यज्ञ २. विज्ञान ३. इतिहास तथा ४ स्तोत्र अथवा स्तुति—में तृतीय इतिहास के साथ यह विषय सम्बद्ध है। यह विषय चतुष्टय ही वेद में प्रमुख रूप से है तथा प्राधान्येन निरूपणीय है, यह ओझाजी का प्रतिज्ञा वाक्य है जो इस रूप में अनेकत्र दोहराया गया है—

यज्ञोऽथ विज्ञानमथेतिहासः स्तोत्रं तदित्थं विषया विभक्ताः।
वेदे चतुर्धा त इमे चतुर्भिर्ग्रन्थैः पृथक्कृत्य निरूपणीयाः॥

अथ के स्थान पर च, तथा स्तोत्रं के स्थान पर स्तुतिः जैसे तनिक से परिवर्तन के साथ यह सङ्कल्पवाक्य ब्रह्मसिद्धान्त, ब्रह्मविनय तथा दशवादरहस्यम् आदि में पढ़ा गया है।

इतिहास के साथ ही पुराण को प्राचीन वाङ्मय में नित्यसहचर द्वन्द्व के रूप में लिया गया है, अतः किसी एक के ग्रहण से दूसरे का ग्रहण स्वतः हो जाता है।

विषय के महाग्रथन स्वरूप को बताते हुए ओझाजी का लेख है—पुराण समीक्षाग्रन्थस्य विश्वविकासाभिधानस्य १. पुराणोत्पत्तिप्रसङ्गाभिधे सन्दर्भे पुराणशास्त्रीय-ज्ञानम्। यह 'पुराणोत्पत्तिप्रसङ्ग' नाम के ग्रन्थ का प्रथम वाक्य है। 'विश्वविकास' नाम के अथवा विश्वविकास का अभिधान=कथन-करने वाले के ये दोनों अर्थ प्रासङ्गिक है और इसी अभिप्राय को लेकर 'पुराण समीक्षा' के साथ अन्वित हैं। पुराण सृष्टि का घटक तत्त्व भी है तथा इस विषय का बोधकशास्त्र भी है, समीक्षा दोनों की ही अभीष्ट है, फलस्वरूप इस वाक्य के दो अभिप्राय हैं, सृष्टि घटक तत्त्व की सर्वतोभावेन विश्वग्रथन परक दर्शन प्रक्रिया, जिसे विश्वविकास नाम से व्यवहृत किया जा सकता है, उस पुराण के उद्भव प्रसङ्ग मात्र को देखना तथा उसका कथन करना, इन दोनों अभिप्राय में पुराण-ब्रह्माण्ड के शास्ता का पुराणशास्त्र नाम से पहिचानने का यत्न 'पुराणशास्त्राभिज्ञान' है।

यह सबकुछ ओझाजी की कल्पना प्रसूत भावाभिव्यंजना नहीं है। पुराणादि शास्त्रों में सर्वत्र ऐसे तथ्य प्रकट किये गये हैं। उदाहरण रूप में कुछ वाक्य प्रस्तुत हैं—

अतश्च संक्षेपमिमं शृणुध्वं महेश्वरः सर्वमिदं पुराणम्।

स सर्गकाले च करोति सर्गं संहारकाले पुनराददीत।। वायु पु. १/२०५

यहाँ 'महेश्वरः सर्वमिदं पुराणम्' से स्पष्ट है कि महेश्वर यह सम्पूर्ण पुराण है अर्थात् प्रत्यक्षतः दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् है, यह पुराणग्रन्थ आदि से अन्त तक उस महासत्ता को ही इस सम्पूर्ण पुराण द्वारा कह रहा है।

ऐसे ही भाव शान्तिपर्व में भी व्यक्त हैं—

सांख्यं च योगं च सनातने द्वे वेदाश्च सर्वे निखिलेन राजन्!

सर्वैः समस्तै ऋषिभि र्निरुक्तो नारायणो विश्वमिदं पुराणम्।। ३४९/७३

राजन् जनमेजय! सभी पूरे के पूरे ऋषियों ने निश्चयपूर्वक जिनके विषय में कहा है वे नारायण ही सांख्य और योग रूप सनातन भाव हैं वे ही निखिल वेद हैं और वे ही यह सम्पूर्ण विश्व हैं।

वायुपुराण का उपर्युल्लिखित पद्य भी शा.प. में है—

एतन्मयोक्तं नरदेव तत्त्वं नारायणो विश्वमिदं पुराणम्।

स सर्गकाले च करोति सर्गं संहारकाले च तदत्तिभूयः।। ३०१/११५

पितामह भीष्म युधिष्ठिर को कह रहे हैं—

नर देव! मैंने तुम्हें यह तत्त्व कहा है कि नारायण ही यह सम्पूर्ण विश्व है। वही सर्गकाल में इसे सर्ग रूप में प्रस्तुत करता है तथा संहार काल में पुनः अपने में समा लेता है।

यही ब्रह्मसूत्र का 'अत्ता चराचरग्रहणात्' है : चराचर को आत्मक्षात् कर लेने से अत्ता=खाने वाला=है। पुराण से ही पुराण का बोध है, इस भाव को शा.प. के ही ये पद्य प्रकट कर रहे हैं—

मही महीजाः पवनोऽन्तरिक्षं
जलौकसश्चापि जलं दिवं च।
दिवौकसश्चापि यतः प्रसूता
स्तदुच्यतां मे भगवन् 'पुराणम्' ।। २०१/६

देवगुरु बृहस्पति भगवान् मनु को कहते हैं कि भगवन् मुझे उस पुराण का स्वरूप बताइये कि जिससे भूमि, भौम पदार्थ, वायु, अन्तरिक्ष, जलजजीव, जीव, जल, द्यौ तथा द्युलोक के सत्त्वों की उत्पत्ति हुई है।

मन्त्र ब्राह्मण से पूर्व ब्रह्माण्डपुराणवेद

श्री ओझाजी का मन्तव्य है कि सर्वप्रथम एक 'ब्रह्माण्डपुराण' नाम का ऋगादि की भाँति विशेष वेद था जिसका आरम्भ 'इदं वा अग्रे.' जैसे वाक्यों से था। यह अनेक मन्त्रों और ब्राह्मणों से पहले अथवा उनके साथ था।

शतपथब्राह्मण (के उपनिषत्–बृहदारण्यकोपनिषत्, २.४.१० तथा ४.५.११) आदि के 'ऋग्वेदः यजुर्वेद.' जैसे वचनों में आये 'पुराण' पद से उसी ब्रह्माण्डपुराण नाम के वेदविशेष का बोध होता है। यह पुराण पुरावृत्त परम्परा का कथन करता है तथा ब्रह्माण्ड की सृष्टि का प्रतिपादन करता है अतः इसे यह ब्रह्माण्डपुराण नाम दिया गया एक संज्ञा के रूप में।

सामान्य अध्ययन का यह परिणाम नहीं है अपितु दिवानिशम् वाङ्मय के गाढपरिशीलन एवं क्रान्तदृष्टि का परिणाम है। इस तथ्य को वे 'विज्ञायते' क्रियापद से व्यक्त कर रहे हैं। यह विषय मेरे मन मस्तिष्क का सदा जागरूक, आत्मभावापन्नता को प्राप्त नित्यज्ञान है जो जीवन् की अनुभूति से साकार है, इस भाव से प्राचीन काल में ऋषि, आचार्य आदि 'विज्ञायते' का प्रयोग करते थे। उदाहरण के रूप में निरुक्त में महर्षि यास्क के ऐसे वाक्य देखे जा सकते हैं। निदर्शन रूप में कुछ स्थल प्रस्तुत हैं—

(क) शक्वर्य ऋचः शक्नोतेः, तद्यदाभि वृत्रमशकद्धन्तुं तच्छक्वरीणां शक्वरीत्वम् इति विज्ञायते।१.८।

(ख) इन्धेभूतानीति वा (इन्द्रः) तद् यदेनं प्राणैः समेधयँस्तदिन्द्रस्येन्द्रत्वम्' इति विज्ञायते।१०.८.।

(ग) अनुमति, राका एवं सिनीवाली कुहू के याज्ञिक परम्परागत अर्थ की पुष्टि में ब्राह्मणवाक्य 'इति विज्ञायते' द्वारा—

"(१) या पूर्वा पौर्णमासी सानुमतिः, या उत्तरा सा राका, इति विज्ञायते।११/२९

(२) या पूर्वामावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूः इति विज्ञायते।११.३०।

(घ) सविता के निर्वचन में यजुर्वेद के सवितृदेवतात्मक दो पशुओं के साम्य से 'विश्वारूपाणिः' के अर्थ की दृढ़ता को प्रमाणित करते हुए यास्क—

(१) अधोरामः सावित्रः (यजु. २९.५८) इति पशुसमाम्नाये विज्ञायते।

(२) कृकवाकुः सावित्रः (यजु. २४.३५) इति पशुसमाम्नाये विज्ञायते।१२.१३।" यजुर्वेद को प्रस्तुत करते हैं।

विज्ञान के इस स्वरूप को कूर्मपुराण अति स्पष्ट रूप में बता रहा है—

चतुर्दशानां विद्यानां धारणं हि यथार्थतः।
विज्ञानमिति तद् विद्याद् येन धर्मो विवर्धते॥ उपरिवि. १५.३२
अधीत्य विधिवद् विद्यामर्थं चैवोपलभ्य तु।
धर्मकार्यान्निवृत्तश्चेन्न तद् विज्ञानमिष्यते॥ ३३

विद्याओं को यथार्थ स्वरूप में जीवन में धारण करना विज्ञान है। इस 'धारणात्मक' विज्ञान से ही धारण स्वभाव धर्म की वृद्धि होती है अन्यथा धर्म धर्म ही नहीं है। विधिवत् विद्याध्ययन कर उसका अर्थ समझ कर भी धारण स्वरूप धर्म की करणीय क्रिया से दूर रहना विज्ञान नहीं है।

सहस्राब्दियों से पुराणों का पठन-पाठन और अनुसन्धान प्रायः निरन्तर रहा है, वह भी इसी वाङ्मय के दर्शन के साथ जो ओझाजी के समक्ष रहा है, किन्तु इस सत्य को क्या किसी से साक्षात् किया तथा परिणाम को निर्भीकता से प्रस्तुत करने में विज्ञानपुरस्सर पहल की? न केवल पुराण, जिनका अनुपद ही ओझाजी ने निर्देश किया है अपितु वेद भी उनके 'विज्ञायते' की घोषणा के आधार हैं। अथर्ववेद का यह मन्त्र वही बात कह रहा है जो ब्रह्माण्डपुराण के विषय में ओझाजी कह रहे हैं—

ऋचः सामानिच्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥ १९.७.२४

उच्छिष्ट से वेद की उत्पत्ति बताने वाला यह मन्त्र उन्हें विशिष्ट नाम के साथ प्रस्तुत कर रहा है जिन्हें ऋग्वेद, सामवेद, छन्दः (अथर्व) वेद, पुराणवेद तथा यजुर्वेद के रूप में पढ़ा गया।

स्पष्ट है कि 'पुराणवेद' वेदविशेष का नाम है। देवर्षि नारद 'इतिहासपुराणं पञ्चमं, वेदानां वेदम् (छान्दोग्य ७.१.२, ७.२.२) कहकर पुराण के वास्तविक रूप की वरिष्ठता बता रहे हैं कि ब्रह्म (सृष्टिकर्ता, वेद) के उभयविध रूप का निरूपक होने से पुराण वेदों का वेद है। अतः ब्रह्म के अण्ड रूप इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि के विषय में इदम्प्रथमतया कथन करने वाला पुराणवेद 'ब्रह्माण्ड पुराण वेद' नाम से व्यवहृत नहीं होगा तो फिर दूसरा नाम क्या हो सकता है?

इसकी पुष्टि में वे पुराणों के वचन भी उद्धृत करते हैं। इनमें मत्स्यपुराण द्वारा तीन तथ्य रखते हैं—१. वेद चतुष्टय एवं पुराण इन पाँच वेदों में स्मृति का प्रथम विषय पुराण है पश्चात् चार मुख से चार वेद। २. विषय रूप में विद्यमान पुराण प्रथम ग्रथन वेला में

जिससे उत्पत्ति हुई है वह पुराण कहा गया है तथा इस पुराण के स्वरूप को बताने वाला वाचिक व्यवहार भी पुराण ही है। पुराण को यहाँ स्पष्ट ही 'भूतप्रकृति' कहा गया है—

ऋक्सामसंघाँश्च यजूंषि चापि
च्छन्दांसि नक्षत्रगतिं निरुक्तम्।
अधीत्यव्याकरणं सकल्पं
शिक्षां च भूतप्रकृतिं न वेद्मि।। २०१.८

ऋचाएँ, साम, यजुः तथा आथर्वण मन्त्र, छन्द, ज्योतिष, निरुक्त, व्याकरण, कल्प तथा शिक्षा का अर्थात् वेदाङ्गों सहित वेदों का अध्ययन करके भी 'भूतप्रकृति' अर्थात् भूत के मूल उस परमेश को नहीं जानता हूँ। भूत-समूह को भी इसी प्रसङ्ग में गिनाया गया है—

पुरुषः प्रकृति बुद्धि विषयाश्चेन्द्रियाणि च।
अहङ्कारोऽभिमानश्च समूहो भूतसंज्ञकः।। २०५/६

पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, विषय (५), इन्द्रियाँ (१०) अहङ्कार और अभिमान, यह समूह भूत नाम वाला है।

इस प्रकार के वचनों को न तो पुराणमूलक कहकर मिथ्या कहा जा सकता है और न अर्थवाद गर्भित प्ररोचना प्रधान पौराणिक कथन ही। स्वयं वेद ही इस भूत प्रकृति को पुराण कहता है—

येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदुः।
यो वै तां विद्यान्नामथा समन्येत पुराणवित्।। अथर्व ११.८.७

मन्यु सूक्त के इस मन्त्र में कहा गया है कि इस पुरोवर्तमान जगत् की इससे दृश्यमानरूप से पूर्व वाली प्रकृति (कारण) भूत जो भूमि रही है, जिसका बोध केवल तत्त्वदर्शी मेधावियों को ही होता है, जो कोई नाम पूर्वक उस भूमि को जानता है, वह पुराणवेत्ता माना जाता है।

यद् भवति निष्ठामापद्यते, तद् भूतम्जगत्, भवति सर्वमत्रास्यांवेति भूमिः प्रकृतिः, यह भूतभूमि पुराण, इसका ज्ञाता पुराणवित्, यह सार है।

यह भूमि अथर्ववेद के ही स्कम्भसूक्त के एक मन्त्र में उस परा सत्ता स्कम्भ का एक अङ्ग कही गयी है, इस पुराण का विवर्तन ही यह सर्ग है—

यत्र स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत्।

एक तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः॥ १०.७.२६

विश्व-प्रजनन क्रिया में प्रवृत्त स्कम्भ ने पुराण का विवर्तन किया। विज्ञजन स्कम्भ के उस अर्थात् प्रजनन से सम्बद्ध एक अङ्ग को 'पुराण' रूप में जानते हैं गहरी अनुभूति के साथ।

पुराणोत्पत्ति प्रसङ्ग के ये दोनों रूप यहाँ अभीष्ट हैं। इस प्रसङ्ग का उत्तर भाग यह 'पुराणनिर्माणाधिकरण' है। उसके आरम्भ में भी ऐसा ही एक कथन शीर्षक रूप में है—

अथपुराणसमीक्षायां पुराणसाहित्याधिकारः

पुराणनिर्माणाधिकरणम्

वेद के इतिहास रूप महाविषय की पुराणसमीक्षा भूमि में जब तत्त्व तथा तत्त्वबोधकशास्त्र रूप पुराणद्वय की उत्पत्ति का दर्शन कर लेते हैं तो शास्त्र को वाचिक रूप देना आवश्यक हो जाता है चिरकालिकता की व्याप्ति वाले ग्रथन के माध्यम से। ग्रथन 'पुराणसाहित्य' है। उसका अधिकार है अर्थात् प्रतिपादन की प्रक्रिया पूर्णतः साहित्य तक नियमित रहेगी। उसमें भी 'पुराण-निर्माण' अधिकार मात्र है यह।

आज हमारे समक्ष जो विपुल ग्रन्थ राशि है, उसका निर्माण कैसे हुआ, उसमें सङ्गति, असङ्गति, विसङ्गति क्या और क्यों हैं, उनकी समाधान रूप व्याख्या क्या है आदि विभिन्न विषयों का यहाँ विचार है। इसके पूर्व के प्रसङ्ग यहाँ नहीं दोहराये गये हैं अतः इसमें प्रवेश ही बड़ा अटपटा लगेगा जब प्रथम वाक्य ही हमारी चिरकालिक मान्यताओं पर आघात सा करता प्रतीत होगा जो मन्त्र और ब्राह्मण के पूर्व अथवा साथ-पुराण की सत्ता की बात करता है।

वह प्रथम वाक्य यह है—

अथैतत् कतिपय मन्त्र-ब्राह्मण-ग्रन्थाविर्भावकालादपि पूर्वं तत्समकालमेव वा आसीदेको 'ब्रह्माण्डपुराणाख्यो वेदविशेषः सृष्टि-प्रतिसृष्टि निरूपणात्मा' 'इदं वा अग्रे नैव किञ्चिदासीद्' इत्यादिनोपक्रान्तः इति विज्ञायते।

इस 'विज्ञायते' की व्याख्या परवर्ती वाक्यद्वय से की गयी है—

तत्परतयैव च 'ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोका सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि'–इति शतपथ ब्राह्मणादिवचनान्तर्गत पुराणपदमुपनीयते। तस्य च पुरावृत्तपरम्पराख्यानात्मकतया ब्रह्माण्डसृष्टिविचारात्मकतया च ब्रह्माण्डपुराणसंज्ञा।

एक अरब पद्यों का एक ही ग्रन्थ था इस कल्प के रूप में कि इससे ज्ञान विज्ञान की सभी आवश्यकताएँ पूरी हो जावेंगी। ३. कालान्तर में जब ज्ञानार्थी इस विशाल ग्रन्थ के धारण में असमर्थ रहे तो ब्रह्मा ने इस ग्रन्थ को विषय विभाग संरचना क्रम से १८ प्रकार के १८ भागों में विभक्त किया जो कालान्तर में जाकर आज हमारे समक्ष विद्यमान १८, १८, महा और उप पुराणों के रूप में हैं। अपेक्षित कथ्य रूप कल्प के अनुसार ही पद्म, बृहन्नारदीय आदि द्वारा व्यक्त रूपों में इसी तथ्य की अभिव्यक्ति का सङ्केत भी यहाँ है।

विविध ब्राह्मणों में ब्रह्माण्ड पुराण

सन्दर्भानुकूल बीच में ही एक पुराण से अठारह पुराणों की उत्पत्ति की बात पूरी कर अब ओझाजी 'ब्राह्मण ग्रन्थाविर्भावकालादपि पूर्वम्' वाले मुख्य प्रतिपाद्य को लेते हुए कहते हैं कि ऐतरेय आदि ब्राह्मणों में प्राप्त सौपर्णोपाख्यान, शुनःशेप आख्यान आदि का मूल वह आदिम पुराण ब्रह्माण्ड पुराण ही रहा है। स्वयम् ब्राह्मण ही कहीं तो यह व्यक्त कर देते हैं कि यह हमारी उपज्ञा नहीं है आख्यान विदों से हमने प्राप्त किया है जैसा कि यहाँ उद्धृत **'सोमो वै राजा'** का अन्तिम वाक्य है—**तदेतत् सौपर्णमिति आख्यान विद आचक्षते।**

पुराण में आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक पक्ष के नाना आख्यान हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में महर्षियों ने इनमें से आख्यान लेकर कहना आरम्भ कर दिया था जो-जो आख्यान मन्त्रों के अर्थ में उपयोगी प्रतीत हुए। ब्राह्मण में आख्यान का निबद्धा प्रवक्ता ऋषि ही रहा है तथापि वह उस आख्यान को स्वोपज्ञ नहीं कहता है। आख्यान विदों की सम्पदा ही मानता है। इससे स्पष्ट है कि पुराण ब्राह्मणों के प्रवचन से पूर्व था। अतः ब्राह्मणों के इन आख्यानों को भी ब्रह्म प्रोक्त मानना उचित ही है। यही तथ्य पद्मपुराण-सृष्टिखण्ड-पुराणावतार में सूत उग्रश्रवा ने 'सूतेनानुक्रमेणेदम्' (२/४९) में कहा है। इसमें वही बताया गया है कि ब्रह्मा द्वारा विस्तारपूर्वक जिसका प्रवचन किया गया था तथा जो ब्राह्मणों में भी पूर्वकाल से ग्रथित था उसी पुराण को पारम्परिक अनुक्रम से सूत ने प्रकाशित किया।

कुछ ऐसे भी विद्वान् हैं जो ब्राह्मणों के आख्यानों को लोक पितामह ब्रह्मा द्वारा कथित नहीं मानते हैं। वे ब्रह्मा शब्द का सम्बन्ध इनसे न मानकर यज्ञ के ऋत्विज ब्रह्मा से मानते हैं जो सर्वविद्य होता है, अत ऐसे ब्रह्माओं द्वारा प्रोक्त ये आख्यान ब्राह्मणों में तत्तद् महर्षि द्वारा रखे गये हैं। इसे पुराण का दूसरा अवतरण कहा जा सकता है।

कृष्ण द्वैपायन कृत पुराणसंहिता

वर्तमान पुराणों की परम्परा में आधारभूत कड़ी कृष्ण द्वैपायन की पुराण संहिता है।

यद्यपि सूत्रपात के रूप में ब्राह्मणों में सभी विद्याओं का उल्लेख है तथापि वे किसी भी एक विद्या को, उसके सम्बन्धित तथा इधर-उधर विप्रकीर्ण विभिन्न विषयों को क्रमबद्ध सुस्पष्ट रूप में एकत्र कर प्रस्तुत नहीं करते हैं अतः जिज्ञासु विनेयों के कष्ट की अनुभूति कर उन पर अनुग्रह बुद्धि से प्रेरित हो प्रतिभाशाली महर्षियों ने विभिन्न ब्राह्मणों की सामग्री चुन-चुन कर अपनी प्रतिभा के अनुसार एक-एक विद्या को लेकर उसका अनुशासन किया, उदाहरण रूप में देखते हैं तो कपिल और पतञ्जलि ने सांख्य और योग को, नन्दी, वात्स्यायन आदि ने कामसूत्र को, मनु आदि ने धर्मसूत्र को, धन्वन्तरि-चरक आदि ने आयुर्वेद को शाकपूणि, यास्क आदि ने निरुक्त को, इन्द्र और पाणिनि आदि ने व्याकरण को एक सूत्रबद्ध व्यवस्थित अनुशासन के रूप में प्रस्तुत किया है।

ठीक इसी प्रकार महर्षि वसिष्ठ के प्रपौत्र, शक्ति के पौत्र, पराशर के पुत्र, सत्यवती नन्दन भगवान् व्यास ने पुराण विद्या को संहिता रूप में संसार के समक्ष रखा।

भगवान् व्यास ने उपाख्यानों का संग्रह ब्राह्मणग्रन्थों से किया, इसी प्रकार गाथाओं के स्रोत भी ब्राह्मण रहे हैं, ब्रह्माण्ड पुराण प्रोक्त जगत् के सर्ग प्रतिसर्ग विषयों को, इनसे सम्बन्धित आख्यान उपाख्यानों को लेकर कल्पशुद्धियों को लेकर संहिता का निर्माण किया जिसमें १८ परिच्छेद थे जो विषय विभाजक रहे। यह पुराण का तृतीय अवतरण था।

व्यासशिष्य लोमहर्षण

भगवान् व्यास ने चारों वेदसंहिताओं के साथ ही इस पञ्चम वेद पुराणसंहिता का भी अध्ययन कराया था। व्यास के पुराण शिष्य लोमहर्षण थे। इनके द्वारा व्यास की पुराणसंहिता के विषय आख्यान, उपाख्यान, गाथा तथा कल्प शुद्धि तो ज्यों के त्यों लिए ही सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित नाम के पाँच विषयों में विभाजित करते हुए इनसे संवलित एक संहिता तैय्यार की गयी जिसे लौमहर्षणी (पुराण) संहिता कह सकते हैं।

लोमहर्षण ने अपने छह शिष्यों को यह पुराणसंहिता दी। इनके नाम-गोत्र हैं १. सुमति आत्रेय, २. अग्निवर्चा भारद्वाज, ३. मित्रयु वसिष्ठ, ४. सुशर्मा शांशपायन, ५. अकृतव्रण काश्यप तथा ६. सोमदत्ति सावर्णि।

कतिपय विद्वानों का मत है कि इन सभी शिष्यों ने एक-एक संहिता का निर्माण किया, इनका आधार बादरायण की आदि संहिता तथा लोमहर्षण की संहिता थी। इस प्रकार ८ संहिताएँ थी।

काश्यप आदि की ३ संहिता

इस ऊपर बताये गये आठ संहिता वाले मत की सुस्पष्ट स्थिति नहीं है तथा न इसका कोई विश्वसनीय उल्लेख ही है। वास्तविकता तो यह है कि लोमहर्षण के तीन शिष्य ही संहिताकार थे।

विष्णु पुराण, वायु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण इन छः शिष्यों में से केवल तीन को ही संहिताकार मानते हैं जिनके नाम हैं—१. अकृतव्रण काश्यप २. सोमदत्ति सावर्णि तथा ३. सुशर्मा शांशपायन। तीनों का कथन सर्वथा स्पष्ट है—

(क) **काश्यपः संहिताकर्ता सावर्णिः शांशपायनः।**
लौमहर्षणिका चान्या तिसृणां मूलसंहिता॥ वि.पु. ३.४.१८

(ख) **त्रिभिस्तत्र कृतास्तिस्रः संहिता पुनरेव हि।** वायु पु. ६१.५७
काश्यपः संहिताकर्ता सावर्णिः शांशपायनः।
मामिका च चतुर्थी स्यात् सा चैषा पूर्वसंहिता॥ ५८

(ग) **त्रिभिस्तत्रकृतास्तिस्रः संहिता पुनरेव हि॥ ब्रह्माण्ड** २/३/६५
काश्यपः संहिताकर्ता सावर्णिः शांशपायनः।
मामिका तु चतुर्थी स्याच् चतस्रो मूलसंहिता॥ ६६

तीनों में समान पद्य हैं। वायु तथा ब्रह्माण्ड सर्वथा समान भाषा का प्रयोग करते हैं। छः में तीन शिष्यों ने संहिताओं का निर्माण किया, लोमहर्षण स्वयं वक्ता है अतः 'मेरी चौथी' कहता है वायु में इसे पूर्व संहिता तथा ब्रह्माण्ड में 'चारों मूल संहिता' कहा गया है। अर्थ एक ही है। विष्णु पुराण में वक्ता पराशर हैं अतः 'एक अन्य लोंमहर्षणकृत संहिता काश्यपादि तीनों की मूलसंहिता' कहा गया है।

भगवान् पराशर स्पष्ट कहते हैं कि लोमहर्षण की तथा उसके तीन शिष्यों की, चारों संहिताएँ ही सभी पुराणों की मूल हैं। यह कथन सर्वथा ठीक है।

आगे चलकर पुराणावतार शीर्षक के अन्तर्गत ओझाजी इस विष्णु पुराण के अनुसार ही सिद्धान्त की स्थापना करते हैं कि आज उपलब्ध १८ पुराण इन संहिता चतुष्टय के आधार पर ही हैं।

अष्टादशपुराण अवतरण

पराशर मैत्रेय को पुराणोपदेश करते हुए कहते हैं कि—

चतुष्टयेनाप्येतेन संहितानामिदं मुने। ३.४.१९
आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते।
अष्टादश पुराणानि पुराणज्ञाः प्रचक्षते॥ २०

विष्णु पुराण में 'चतुष्टयेन भेदेन' पाठ है। इससे अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता है कथन के प्रकार में अवश्य कुछ भेद हो जाता है। स्वयम् ओझाजी जब विष्णु पुराण के नाम से ही उद्धृत कर रहे हैं तो कालान्तर में पाठभेद जैसा प्रश्न क्यों उठे, अतः मूल में इसे शुद्ध कर दिया गया है। विष्णुचित्तीय तथा श्रीधर टीका में किसी पाठ भेद की सूचना भी नहीं है। गीता प्रेस गोरखपुर के संस्करण में भी यही पाठ है। श्रीधर के नीचे दिये अर्थवाक्य से ओझाजी के पाठ की सम्भावना है।

मुने! संहितानां चतुष्टयेन भेदेन इदम् सर्वपुराणानाम् आद्यं ब्राह्मं पुराणम् उच्यते। पुराणज्ञाः अष्टादश पुराणानि प्रचक्षते।

पराशर स्पष्ट कह रहे हैं कि थोड़ी-थोड़ी भिन्नता रखने वाली इन चार संहिताओं से पुराण विद्या के विभिन्न ग्रन्थों का निर्माण हुआ है, इनमें सभी पुराणों का आदि ब्रह्मपुराण माना गया है, इसे लेकर कुल १८ पुराण हैं ऐसा पुराणज्ञ कहते हैं।

इस कथन से एक तथ्य स्पष्ट होता है कि नाम विशेष के बिना प्रयुक्त 'पुराण' शब्द पुराण सामान्य का बोधक है किसी पुराण विशेष का नहीं। जैसे यहीं विष्णु पुराण के इसी पद्य में आया हुआ इदम् (यह) शब्द विष्णु पुराण का संकेत न कर 'पुराण' का बोधक है। तभी उत्तरार्ध की सङ्गति है। ये चारों संहिताएँ पुराण मात्र की मूल हैं इस अर्थ के पश्चात् इदम् का अर्थ विष्णु पुराण भी लिया जाता है। स्वयम् पराशर की *गणना* में यह तृतीय है, प्रथम दो के बिना तृतीय कैसे कहाँ से?

विष्णुचित्तीय में अतिसंक्षेप में 'पुराणसंहितानामेतेन चतुष्टयेन मूलभूतेन तदर्थं स्मृत्वा पुरुषभेद–कालभेदानुगुण्येन मयेदं वैष्णवं पुराणं कृत मित्यर्थः। एतत्संहिता चतुष्टयमूलभूतत्वं सर्वपुराणानां साधारणम्।' ॥१९॥ कथन द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है। अतः जहाँ कहीं भी पुराण के उत्तरोत्तर अध्यापन का उल्लेख किया जाता है वहाँ प्रमुख रूप में 'पुराण' विषय है, गौण रूप में उस पुराण विशेष का ग्रहण है।

श्री श्रीधर स्वामी सम्भवतः इस तथ्य को नहीं पकड़ पाये हैं उनका कथन यहाँ इस रूप में है—एतासां काश्यपादिकृतानां संहितानां चतुष्टयेनापि मूलभूतेन तत्सारोद्धारात्मकमिदं विष्णुपुराणं मुने मैत्रेय मया कृतमितिशेषः। ॥१९॥ यदि समझा हुआ होता यह विषय तो उनका अगला वाक्यविन्यास—'इदानीं व्यासकृतान्येवाष्टादशपुराणान्याह—आद्यमित्यादि-सार्धैश्चतुर्भिः' जैसा नहीं होता।

ओझाजी परम्परा सम्बन्ध से इनका व्यास के साथ सम्बन्ध मानते हैं जो उचित भी है साक्षात्कर्तृत्व तो तनिक भी नहीं है।

वायु पुराण के पद्यों के उद्धरण के अन्त में 'तदित्थं वेदव्यासकृतानां होत्रुद्गात्र... प्रासिध्यन्त तथा चोक्तं कौर्मेऽपि' द्वारा स्पष्ट करते हैं जैसे एक-एक वेद शिष्य प्रशिष्यों द्वारा अनेकानेक शाखाओं में बढ़ता गया वैसे ही लोमहर्षण को दी गयी एक पुराण संहिता उससे तथा उसके शिष्यों से चार शाखाओं में फैली तथा उनसे ही अष्टादश (१८) विभिन्न विभिन्न पुराणग्रन्थ बने। लिङ्गपुराण के 'पराशरसुतो व्यासः..... भेदैरष्टादशैर्व्यासः' पद्यों से ओझाजी अपनी बात का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

पुराणराशि सम्पादक उग्रश्रवाः

आज प्राप्त पुराण ग्रन्थ राशि को हम तक पहुँचाने का श्रेयः सूत लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवाः को जाता है।

अपने पिता की तथा उनके तीनों शिष्य अकृतव्रण, सावर्णि तथा शांशपायन की शिष्यता का सौभाग्य उग्रश्रवा को मिला। तक्षशिला में हुए जनमेजय के सर्पसत्र में आये सशिष्य भगवान् व्यास के साक्षाद् दर्शन का ही नहीं वैशम्पायन से सम्पूर्ण महाभारत सुनने का भी स्वर्णावसर इसे मिला जहाँ जनमेजय के प्रश्न और वैशम्पायन के उत्तर *साक्षात् सुने भी*। वहाँ से लौटते समय ही मार्ग में नैमिषारण्य जाकर कुलपति शौनक यज्ञ में सम्पूर्ण महाभारत सुनाने का सुखद संयोग भी अपने पुरुषार्थ से प्राप्त किया, यहाँ सुनाये गये महाभारत ग्रन्थ का इनके द्वारा सम्पादित रूप आज हमें प्राप्त है। इसी भाँति चारों पुराण संहिताओं का सम्पादन भी इन्हीं का है। व्यास से प्राप्त पुराण ज्ञान लोमहर्षण ने *ज्यों-का-त्यों इन्हें दिया अतः ये परम्परया* व्यास शिष्य भी हैं।

इन संहिताओं के आधार पर ही इतस्ततः अन्य मुनि तथा लोमहर्षण और शांशपायन आदि भी विभिन्न स्थानों में विशाल जनसमुदायों में कथा करते थे। उग्रश्रवा यत्नपूर्वक इसका संग्रह करते रहते थे।

पुराण कथा सूत की वृत्ति (जीविका) भी हैं। इसके लिए भी इनका सदा सर्वत्र प्रयास होता रहता था। फलस्वरूप भीष्म-पुलस्त्य, पराशर-मैत्रेय आदि के संवाद सुनने को मिलते रहते थे। उग्रश्रवा का ज्ञान कोश बढ़ता रहता था।

लोमहर्षण की उपस्थिति में भी उनके आदेश से उग्रश्रवाः ऋषि आश्रमों में कथा कहने के लिए जाते थे। वह भी बराबर संहिताबद्ध होता रहता था। ऐसी ही संहिताबद्ध सामग्री अपने पिता की भी मिली। उग्रश्रवा ने उसे भी सुरक्षित रखा। इस प्रकार एक ही पुराण थोड़ा-थोड़ा भिन्न बन गया। नये-नये निकले उग्रश्रवा की परीक्षा भी ऋषि लोग लेते थे जिसमें कभी किसी प्रसङ्ग को वहाँ से आगे कहने के लिये कहते थे जहाँ तक वे लोमहर्षण से सुन

चुके थे। स्वाभाविक है कि कुछ भी अन्तर आवेगा ही तथा ग्रन्थ रूपों में भिन्नता आवेगी, ऐसे अनेक कारणों से कई पुराणों के दो-दो अथवा अधिक भी रूप हैं।

महाभारत युद्ध में भाग लेने से बचने के लिए बलराम ने उन दिनों तीर्थयात्रा का कार्यक्रम बना लिया था। यह ४२ दिन का था तथा अन्तिम दिवस भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध वाला था। अपने यात्रा क्रम में बलराम ने लोमहर्षण को कथा कहते देखा जहाँ वे ऋषियों से भी उच्च आसन पर थे। बलराम ने इसे मर्यादातिक्रम देख कर दण्ड देने के रूप में प्रहार किया तथा लोमहर्षण की मृत्यु हो गयी। अब ऋषियों के कथन से बलराम को अपनी त्रुटि का बोध हुआ। उसी समय से उग्रश्रवा का नियमित कथाक्रम प्रारम्भ हुआ। निरन्तर इतने समय कथा कहते रहने पर भी जब वे महाभारत कथा (लगभग ८०-९० वर्ष के अनुभव के बाद भी) कहने जाते हैं तो शौनक महाभारत के विषय में उनको परखते हैं। ऐसे अवसरों पर कथा के क्रम में कई तरह के परिवर्तन आ जाते हैं।

इस प्रकार निरन्तर १०-११ सहस्र वर्षों की निरन्तर यात्रा में उग्रश्रवा तक आते-आते पुराण का स्वरूप बीहड़ वन का रूप ले लेता है। लगभग दो ढाई सहस्र वर्षों से तो स्थिति और भी विकट हो गयी है, पर्याप्त मिश्रण, अज्ञानवश सहस्रों त्रुटियाँ, नाना विपदाओं में ग्रन्थ नाश आदि इस विकटता में प्रबल हेतु रहे हैं। इस स्थिति में इन सब पुराणों के यथार्थ रूप का उद्धार करना कारण-पुरस्सर सब का युक्तियुक्त समाधान देना इन सब में एकवाक्यता के सूत्र को पकड़ना अनन्यसामान्य कार्य है। यह सब कुछ इस भाग में उनके द्वारा बताया गया है। यहाँ पुराण उपपुराण के स्वरूप भेद पर भी गहरी चर्चा है।

वेद शाखोत्पत्ति क्रम

सभी पुराणों में, जहाँ-जहाँ भी पुराणावतरण प्रसङ्ग है, यह विषय वेद के रूप में देखा गया है। वेदों के विभाजन का प्रसङ्ग व्यास के पाँच शिष्यों के अध्यापन से प्रारम्भ होता है एक-एक वेद के लिए एक-एक शिष्य का ग्रहण व्यास करते हैं। प्रसङ्ग ऋग्वेद से प्रारम्भ होता है तथा पुराण पर पूर्ण होता है। यह स्पष्ट ही वेद पुराण का ऐकात्म्य है।

इसी दृष्टि से यहाँ ग्रंथ का दूसरा विभाग वेदशाखोत्पत्ति-क्रम है जो 'वेदपुराणादि-शास्त्रावतारे' अधिकार में है। पैल, वैशम्पायन, जैमिनि तथा सुमन्तु क्रमशः ऋग्, यजुः, साम तथा अथर्ववेद के लिए एवं रोमहर्षण इतिहास पुराण के लिये व्यास द्वारा दीक्षित किये जाते हैं।

वेद की रक्षा के लिए वेदज्ञों की परम्परा की सुरक्षा अनिवार्य है। इसका एक ही मार्ग

है अध्येता अध्यापकों की संख्या बढ़ाना। इसका परिणाम है शाखाओं का विस्तार। चतुर्दिक् समान विस्तार वृत्त है। भूमि पर इस वेदवृत्त को बड़े करने के पदों का न्यास व्यास है, जितना बड़ा व्यास उतना बड़ा वृत्त। शाखाओं की स्थिति का सर्वविध वर्णन शाखा का इतिहास है जो पुराण के दिये गये इस परिचय से स्पष्ट है। ऐसा ही वृत्त शाखाओं का है।

इस शाखोत्पत्ति क्रम के इतिहास में बहुत अधिक अस्तव्यस्तता है। विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड, भागवत एवं मत्स्य पुराणों के तथा पं. भगवद्दत्त जी के वैदिक वाङ्मय के इतिहास के आधार पर इस स्थल का पाठसंशोधन का प्रयत्न रहा है तथा तदनुसार पाठ ठीक किया भी गया है किन्तु अब भी यहाँ बहुत अधिक अनुसन्धान की आवश्यकता है। समयाभाववश मनचाहा कार्य नहीं हो सका, इसका खेद है।

शाखा क्या है?

प्रसङ्गप्राप्त शाखा तथा शाखावृद्धि पर उठे कुछ विचार यहाँ प्रस्तुत हैं, सुधीजन इस पर विचार करें।

भारत युद्धानन्तर भीष्म पितामह के प्राण त्यागने तक तथा उसके भी कुछ बाद तक कृष्ण हस्तिनापुर में ठहरे थे। एक बार अर्जुन कृष्ण के उन सभी नामों का निर्वचन बताने का निवेदन करता है जो प्रमुख प्रमुख विविध शास्त्रों में आये हैं। इसी क्रम में वे अर्जुन को कहते हैं—

एकविंशतिसाहस्रमृग्वेदं मां प्रचक्षते।
सहस्रशाखं यत्साम ये वै वेदविदोजनाः ॥ शां.पर्व ३४२.९७॥
गायन्त्यारण्यके विप्रा मद्भक्तास्ते हि दुर्लभाः।
षट् पञ्चाशतमष्टौ च सप्तत्रिंशतमित्युत ॥ ९८॥
यस्मिञ्शाखा यजुर्वेदे सोऽहमाध्वर्यवे स्मृतः।
पञ्चकल्पमथर्वाणं कृत्याभिः परिबृंहितम् ॥ ९९॥
कल्पयन्ति हि मां विप्रा आथर्वणविदस्तथा।
शाखाभेदाश्च ये केचिद् याश्च शाखासु गीतयः ॥ १००॥
स्वरवर्णसमुच्चाराः सर्वांस्तान् विद्धि मत्कृतान्। १०१॥

इक्कीस शाखामय ऋग्वेद मुझे ही कहते हैं, वेदवित् एक सहस्र शाखामय जिस सामवेद को वेदज्ञविप्र आरण्यक में गाते हैं वे मेरे भक्त दुर्लभ हैं। जिस यजुर्वेद में अध्वर्यु कर्म सम्बन्धी १०१ शाखा हैं उस रूप में मैं ही हूँ। नाना प्रकार की कृत्याविधियों से सम्पन्न पञ्चकल्पात्मक अथर्व को अथर्वविद् ब्रह्मा मेरा ही रूप मानते हैं। ९७-९९। जो

भी शाखाभेद हैं तथा शाखाओं में उदात्तादि स्वरों निषाद आदि स्वरों की तथा स्वर-व्यञ्जन वर्णों की सम्पदा युक्त गीतियाँ हैं, उन्हें मेरे द्वारा निर्मित समझो। १००-१।

इन पर ध्यान देने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि गुरु शिष्य परम्परा से बनी ये संहिताओं की यत्किञ्चिद् भेदयुक्त ग्रन्थावलि नहीं है। ऋग्वेद के घटक जो २१ अवयव हैं उन अवयवों की सम्पन्नता से ऋग्वेद की कृत्स्नता के रूप का बोध होता है। ऐसा ऋग्वेद भगवान् का रूप है अथवा भगवान् ऐसे ऋग्वेद हैं। आध्वर्यव कर्म के १०१ प्रकार हैं, उन प्रकारों वाला यजुर्वेद भगवान् का रूप है। अथर्ववेद के शान्त्यादि पाँच कल्प हैं, एतत्कल्प-सम्पन्न अथर्व भगवद्रूप है। सहस्रों प्रकार वाली गीतियों की योनि साम का गान करना भगवान् को गाना है।

इन सब भावों के याथार्थ्य पर दृढ़विश्वास दिलाने वाला वाक्य अन्तिम पद्य है जहाँ ये भगवान् के किये हुए ही बता दिये गये हैं।

यहाँ प्रथम पद्य में 'साहस्र' का अभिप्राय हजार की संख्या बताने की नहीं है, बतायी गयी संख्या २१ की अविकलता बताना इसका भाव है।

गीताप्रेस गोरखपुर के अनुवाद युक्त संस्करण में शत पाठ का ९८ वें पद्य के प्रथम चरण में षट् के स्थान पर, उसे हटाकर ठीक पद षट् किया गया है। सहस्र की भाँति शत का प्रयोग भी कृत्स्नता और बहु अर्थ में होता है अतः १०१ की संख्या इसके बिना पूर्ण हो सकती तो इसे रखा जा सकता था। षट् (छ) का बोधक शब्द अनिवार्य था अतः उसे हटाना पड़ा तथा छ की पूर्ति के लिए षट् पद लेना पड़ा।

भगवान् के असंख्य नामों में वेद भी है, जो **'वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित् कविः'** (२७) विष्णु सहस्र नाम स्तोत्र के इस पद्यार्ध से स्पष्ट है, अतः ये भगवान् के नाम के रूप में है इसमें सन्देह नहीं है। प्रसंग भी इस अध्याय का यही है। यजुर्वेद (माध्य. सं.) के १८ वें अध्याय की ६७वीं कण्डिका में स्पष्ट कथन भी प्राप्त है—

ऋचो नामास्मि, यजूंषि नाम अस्मि सामानि नामास्मि। अतः ऐसा लगता है कि वेद में ऋगादि के ये रूप हैं, वाङ्मय वेद के भाग नहीं है।

भगवान् वेदव्यास के शिष्य पैल आदि के शिष्य प्रशिष्यों द्वारा किये गये ये भेद कृष्ण के कथन से व्यक्त हैं तो क्या यह सम्भव है कि कृष्ण और अर्जुन की उपस्थिति में सुनिश्चित रूप से इन शाखाओं का स्वरूप नियत हो चुका था तथा इन्हीं को लेकर कृष्ण का कथन है तो कृष्ण के 'सर्वान् तान् मत्कृतान् विद्धि' कहने का क्या भाव है? सत्यवतीनन्दन व्यास से प्रारम्भ इस भेद की पूर्णता जो कई पीढ़ियों में हुई है क्या ३००-

४०० वर्ष में सम्भव है जिसकी उस समय ९० वर्ष की आयु के कृष्ण द्वारा पूर्ति का कथन है। शिष्यों के अध्यापन से इस प्रकार के विभेद उस समय होते गये तो कृष्ण अर्जुन आदि के समय तथा बाद में क्यों नहीं हुए, यह विचारणीय है।

महाभारत में एक दूसरा प्रसंग भी है जो वेदाध्येताओं के पञ्चवेद, चतुर्वेद, त्रिवेद, द्विवेद एकवेद भेद का है, सर्वथा वेदाभाव वाले, अनृच् वर्ग के लोगों की भी चर्चा है। धृतराष्ट्र सनत्सुजात से प्रश्न करते हैं कि ये सब अपने-अपने अधिकार का गर्व करते हैं। कृपया कहिये कि इनमें श्रेष्ठ कौन है? उत्तर में भगवान् सनत्सुजात कहते हैं कि एक वेद के अज्ञान से ये अनेक वेद हुए हैं—

एकस्य वेदस्य चाज्ञानाद् वेदास्ते बहवोऽभवन्। उद्यो. प. ३७

प्रकृत सन्दर्भ के अनुसार इसका भाव है कि विभिन्न विषयों के ज्ञानाकर इस एक वेद के न जानने से अनेक वेद खड़े हो गये हैं। इधर समाज में पञ्चवेद चतुर्वेद आदि को देखते हैं तो इसमें एक स्पष्ट व्यवस्थातन्त्र दृष्टि में आता है।

चारों वेदों को पढ़ना-पढ़ाना आर्यों का परम धर्म है। जब इसमें शैथिल्य आया तो वैदिकतन्त्रानुशासित समाज में एक सार्वभौम सार्वकालिक व्यवस्था दी गयी कि अपनी शक्ति, मेधा तथा रुचि के अनुसार वेदाधिकार को लोग लें तथा उसका अनिवार्यतः पालन करें।

जो एक वेद के अध्ययन में पूर्णतया प्रवण थे, आज उन्हें यज्ञार्थ विभाजित वेद चतुष्टयी तो दी ही गयी, अर्थ रूप पञ्चम वेद भी दिया गया। इस प्रकार यह प्रथम वर्ग पञ्चवेद अथवा पञ्चवेदी कहलाया। इस प्रकार के सामर्थ्य का जिन में अभाव था, उन्हें स्वेच्छा से कोई तीन वेद चुनने का स्वातन्त्र्य रहा। इस प्रकार वे अधिकार से त्रिवेद हुए, ऐसे ही कई वर्ग द्विवेद के थे। शेष को एक-एक वेद दिया गया। सम्भवतः यहाँ ऋगादि के विभिन्न भेदों में किसी एक को दिया गया हो, यदि ऐसा है तो इस वेद के सहस्रों वर्ग हो सकते हैं।

पञ्चम वेद सबके साथ था, जैसे पुराणवेद, इतिहासवेद, नाट्यवेद, गान्धर्ववेद, धनुर्वेद, आयुर्वेद आदि। अनिवार्यत्वेन अपेक्षित अर्थ की प्राप्ति का, स्वरूप का तथा वृत्ति का वेद यही है अतः सबके लिए अनिवार्य था। जिन्हें वेदाधिकार नहीं दिया गया उन अनृचों (ऋक्=वेद, उससे रहित) को भी पञ्चमवेद तो अनिवार्य था ही।

वेदरक्षा की इस व्यवस्था के स्थायित्व के लिए परम्परा की रक्षा के लिए जिन्हें अध्यापन के माध्यम से प्रचार-प्रसार का विशेषाधिकार दिया गया वे इस वृत्त के व्यास

बनें। ये इसी उद्देश्य से अध्यापन कराते थे। भगवान् कृष्ण द्वैपायन से यह व्यवस्था चली।

जब पैल आदि शिष्य विद्या और व्रत की पूर्ति से उभयस्नातकत्व की प्राप्ति कर समावर्तन चाहते हैं और व्यास से निवेदन करते हैं तो व्यास उन्हें कहते हैं—

ब्राह्मणाय सदा देयं ब्रह्म शुश्रूषवे तथा।। शां. प. ३२७/४३
भवन्तो बहुलाः सन्तु वेदो विस्तार्यतामयम्।। ४४
श्रावयेच्चतुरोवर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः।
वेदस्याध्ययनं हीदं तच्च कार्यं महत् स्मृतम्।। ४९
एतद् वः सर्वमाख्यातं स्वाध्यायस्य विधिं प्रति।
उपकुर्याच्च शिष्याणामेतच्च हृदि वो भवेत्।।५२।।

भगवान् व्यास समावर्तन (दीक्षान्त) शिक्षा देते हुए उन्हें स्वाध्याय विधि का उपदेश करते हैं जो इसका सूचक है कि गुरु एतदर्थ अनुकूल विचार रखते हैं। इस शिक्षा के मूल सूत्र ये हैं—शुश्रूषा भाव वाले ब्रह्म (वेद) को समर्पित अतएव ब्राह्मण को तो सदैव सभी परिस्थिति में वेद देना ही है। आप लोग अपनी संख्या बढ़ायें तथा वेद का विस्तार करें। ब्राह्मण के प्रामुख्य के साथ चारों वर्णों को वेदश्रवण करवाना है, वेद का यह अध्ययन ही महाकार्य माना गया है। यही पूरी स्वाध्याय विधि मैंने आप लोगों को कही है, तुम्हारे मन मस्तिष्क में यह बात सदैव रहे कि शिष्यों का सदैव उपकार हो।

अब शिष्य विदा होने के उद्देश्य से पुनः व्यास के सम्मुख आकर निवेदन करते हैं–

महामुने हम इस मेरु से उतर कर भूमि पर जाना चाहते हैं वेदों को अनेक प्रकार से अनेक लोगों तक पहुँचाने के लिये। आप को ठीक लगे तो आदेश कीजिये, मूल पद्य यह है—

शैलादस्मान् महीं गन्तुं कांक्षितं नो महामुने!
वेदाननेकधा कर्तुं यदि ते रुचितं प्रभो! ३२८/४

यह सुनकर भगवान् व्यास कहते हैं—

क्षितिं वा देवलोकं वा गम्यतां यदि रोचते।
अप्रमादश्च वः कार्यो ब्रह्म हि प्रचुरच्छलम्।। ६

पृथ्वी लोक को अथवा तुम्हें रुचिकर लगे तो देवलोक को जाओ। तुम्हें प्रमाद तनिक भी नहीं करना है, ब्रह्म पद पद पर प्रचुर छल वाला है। अतः कभी प्रमादवश पथभ्रष्ट मत होना।

वेद के सभी पक्षों को सभी के समक्ष सावधानी से रखकर जन-जन में वेद पहुँचाओ, यही व्यास का आदेश था तथा यही पूर्णतः स्वीकार कर वे वहाँ से जाते हैं। यह पुराणों में प्रतिपादित व्यास परम्परा से कुछ भिन्न लगता है साथ ही पञ्चवेद चतुर्वेद आदि की व्यवस्था के लक्ष्य की पूर्ति की ओर सङ्केत करता हुआ प्रतीत होता है। विद्वद्‌गण विचार करें एतदर्थ यह प्राथमिक विचार प्रस्तुत किया गया है।

पुनः पुराणावतार

यहाँ विष्णु पुराण के अनुसार भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास के विशेष दाय को बताते हुए पुराणावतार सीधे सादे रूप में अत्यन्त संक्षेप में कहा गया है।

इस विष्णु पुराण में इस मन्वन्तर के प्रति द्वापर होने वाले २८ व्यासों की एक सूची दी गयी है। इसमें (तृतीय खण्ड, द्वितीय अध्याय में) सभी व्यासों के द्वापर क्रम से नाम हैं। प्रथम व्यास भगवान् स्वयम्भू ब्रह्मा हैं तथा अन्तिम अर्थात् २८वें श्रीकृष्ण द्वैपायन हैं।

इन सभी व्यासों ने अपने कालाधिकार में एक वेद के चार वेद किये हैं जैसा कि इसी अध्याय के निम्नलिखित पद्य में निर्दिष्ट है—

एको वेदश्चतुर्धा तु तैः कृतो द्वापरादिषु। ३.३.२०
भविष्ये द्वापरे चापि द्रौणि र्व्यासो भविष्यति।
व्यतीते मम पुत्रेऽस्मिन् कृष्णद्वैपायने मुने॥ २१

इन सभी व्यासों ने एक वेद को चार वेदों में विभक्त किया है जब-जब द्वापर का आरम्भ हुआ है। भावी द्वापर में द्रोणाचार्य पुत्र अश्वत्थामा व्यास होंगे जब मेरे पुत्र कृष्ण द्वैपायन का कालकृत व्यासाधिकार निवृत्त हो जाएगा।

जब सभी व्यासों का समान कार्य रहा तो ऐसी स्थिति में वह क्या वैशिष्ट्य है जिससे कृष्ण द्वैपायन की व्यासत्वेन इतनी ख्याति है तथा इनके साथ पुराण बहुत अधिक ऐसा जुड़ गया है जैसे व्यास और पुराण पर्यायवाचक से बन गये हैं। इस प्रकार की जिज्ञासा को लेकर कृष्ण द्वैपायन के पिता भगवान् पराशर प्रमुख रूप से व्यास का पुराण के क्षेत्र में एक ही काम बता रहे हैं और वह है 'पुराणोद्धार'।

पुराण के पञ्च लक्षण प्रसिद्ध हैं। इन्हीं को पूर्णतया दृष्टि में रखकर जातूकर्ण्य तक सभी ने पुराण कार्य किया है। उसी का परिणाम है कि स्वायम्भुव से वैवस्वत तक के सात मनुओं के काल में से प्रथम छः मनुओं के कार्य से हमारा गाढ परिचय नहीं है। अत्यन्त दीर्घकाल की परम्परा में प्रचुर मात्रा में कार्यहोने के कारण। उन छः मनुओं के समय के प्रमुख प्रमुख कार्यों को थोड़ा-सा बता कर वर्तमान पुराण यही करते हैं कि शेष

कार्य भी इस समय के जैसे ही हुए हैं। इस प्रकार कुछ कार्यों की अखण्ड परम्परा को छोड़ कर शेष को अनुमान से बुद्धिगम्य करने का निर्देश है। कृष्ण द्वैपायन ने सर्वसाधारण के लिए भी उपयोगी विषयों को लिया है तथा पूर्वकाल के और वेदों के कुछ विशेष सन्दर्भों को भी पुराण में जोड़ा है। इसे पराशर ने इस पद्य से बताया है—

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानै र्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः॥

पुराण के स्वरूप एवं प्रयोजन के भली प्रकार से ज्ञाता कृष्ण द्वैपायन ने पुराण विषय के संग्रह की संहतिबद्धता को आख्यान, उपाख्यान गाथाओं और कल्पशुद्धियों से समन्वित किया।

ख्या प्रकथने धातु, आ उपसर्ग तथा भाववाचक ल्युट् प्रत्यय (व्यवहारात्मक रूप यु=अन) के योग 'आख्यान' का अर्थ है साधारण व्यवहार से कुछ प्रकृष्ट और सर्वाङ्गीण पक्ष से समन्वित कथन। इस शाब्दिक अर्थ के परिप्रेक्ष्य में किसी के जीवन का स्वप्रत्यक्ष चरित वर्णन करना पारिभाषिक रूप में 'आख्यान' कहा जाता है। ऐसे किसी आख्यान को कोई अन्य अपने ग्रन्थ में प्रासङ्गिक रूप में ग्रथित करता है तो वह 'उपाख्यान' कहा जाता है। महाभारत को इस दृष्टि से देखते हैं तो कुरुवंश के प्रतीप-शान्तनु-भीष्म आदि के साथ जनमेजय तक का सम्पूर्ण चरित व्यास निबद्ध होने से आख्यान है। यहीं प्रासङ्गिक रूप में भगवान् राम का चरित भी निबद्ध है। यह उपाख्यान है व्यास इसके स्रोत नहीं हैं, मूलतः आख्याता भगवान् वाल्मीकि इसके स्रोत हैं अतः रामायण वाल्मीकि की उपज्ञा का परिणाम भगवान् राम का चरित, वाल्मीकि का आख्यान-निबद्धा के रूप में, राम का आख्यान-नायक के रूप में है। जब भगवान् व्यास इसे 'रामोपाख्यान' कहते हैं तो बिना कहे भी वे वाल्मीकि का ऋण स्वीकार करते हुए उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करते हैं। इस चरित की विश्वसनीयता के लिए वाल्मीकि का नाम एक मोहर (मुद्रा) लगाने का काम भी करता है। यदि किसी आख्यान का कर्तृसम्बन्ध ज्ञात नहीं है एवं परम्परागत श्रवणश्रावण से मिला है अथवा इतिहास की दृष्टि से सुप्रसिद्ध है तो उसे भी महाभारत में भगवान् व्यास ने उपाख्यान ही कहा है, इनके उदाहरण दो तो अतीव प्रसिद्ध हैं १. नल-दमयन्ती, २. सावित्री-सत्यवान्, जन-जन की जिह्वा पर नाचती जीवनप्रद ये कथाएँ किसी समग्र आख्यान संहिता के रूप में न मिलने पर भी 'इतिहास' के रूप में एक प्राचीन थाती की भाँति व्यास तक पहुँची है प्रासङ्गिक रूप में महाभारत-पात्र युधिष्ठिर के शोक को दूर करने के लिए महर्षि मार्कण्डेय

द्वारा सुनाये गये ये तीनों आख्यान हैं जो व्यास द्वारा उपाख्यान रूप में निबद्ध हैं। ऐसे प्रसङ्गों को महाभारत में सर्वत्र उपाख्यान नाम दिया गया है।

वाल्मीकि रामायण में भी अनेक अनेक उपाख्यान हैं। महर्षि विश्वामित्र द्वारा कथित आख्यानों को वाल्मीकि ने प्रासङ्गिक रूप में निबद्ध किया है जो बालकाण्ड में (१) सिद्धाश्रम वर्णन (२) स्वयम् की उत्पत्ति बताने के क्रम में कुशनाभचरित (३) गङ्गोत्पत्ति (४) इसी का प्रसंग कार्तिकेयोत्पत्ति जिसे 'कुमारसम्भव' नाम विश्वामित्र ने ही दिया है, (५) इसी क्रम में सगर-उपाख्यान, इस प्रकार बालकाण्ड में ही अनेक उपाख्यान हैं। ये वाल्मीकि प्रदत्त है, उनके द्वारा ग्रथित हैं किन्तु उनकी निजी कृति नहीं है, प्रसङ्गोपात्त है प्राचीन परम्परा से प्राप्त हैं। रामायण को सर्वत्र वाल्मीकि कृत 'आख्यान' ही कहा गया है किन्तु जहाँ ग्रन्थ परिचय का प्रसङ्ग है, इसमें शतशः उपाख्यानों का होना बताया गया है। इसका परिचय देते हुए लवकुश राम के प्रश्न के उत्तर में कहते हैं—

वाल्मीकि र्भगवान् कर्ता सम्प्राप्तो यज्ञसंविधम्।
येनेदं चरितं तुभ्यमशेषं सम्प्रदर्शितम्॥ उ.का. ९४/२५
सन्निबद्धं हि श्लोकानां चतुर्विंशत् सहस्रकम्।
उपाख्यानशतं चैव भार्गवेण तपस्विना॥ २६

इस आख्यान रामायण के कर्ता भगवान् वाल्मीकि यहाँ यज्ञ में आ पहुँचे हैं जिन्होंने इसमें आपका सम्पूर्ण चरित बताया है। २४००० सुन्दर पद्यों की तथा शतशः उपाख्यानों की रचना तपस्वी भार्गव की है।

वंश और वंशानुचरित के अंश में पुराण में अनेक कथाएँ सामान्यतया होती ही है। प्रसङ्ग प्राप्त इन कथाओं को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए अनुकूल रूप में उपाख्यान का रूप देकर पुराण का भाग बनाना चाहिये, केवल पीढ़ियों की क्रम रचना से वंश को वंशावलि द्वारा देकर तथा अनुवंश में विभक्त शाखा का विवरण देकर इतिकृत्य की पूर्ति नहीं मान लेनी चहिये, यह सन्देश व्यास ने दिया जिसे विष्णु पुराण ने रेखाङ्कित किया है।

गाथा और कल्पशुद्धि भी जनजीवन में प्रेरणा के स्तम्भ होने के साथ-साथ जीवन के किसी विशेषातिविशेष पक्ष को तथा धर्ममीमांसा को भी प्रस्तुत करते हैं।

भगवान् वाल्मीकि ने राम का आदि से अन्त तक का सम्पूर्ण चरित कहा है। उस समय अवसर विशेष पर रामविषयक सर्वसाधारण की क्या दृष्टि रही है और इसका सहज हार्दिक रूप वाणी के मनोहर विवर्तरूप में प्रकट हो पड़ा है, यह गाथा है। ऐसी सहस्रों

गाथाएँ प्रचलित हैं, ये लोकभाव स्थायीरूप से लोक कण्ठहार बने रहें एतदर्थ इन्हें पुराण में भी सन्निविष्ट करने पर भगवान् व्यास ने बल दिया। स्मरणीय है कि वेद में भी ऐसी गाथाएँ हैं।

ऋग्वेद के ब्राह्मण 'ऐतरेय ब्रा.' में शुनःशेप के आख्यान को 'ऋक्शतगाथम्' कहा है (३३.६) है। सुप्रसिद्ध अनुष्टुप् पद्य जो प्रायः ऐसे अवसरों पर बोला जाता है, इसी आख्यान की गाथा है—

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठँस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन् चरैवेति।। ३३.३

श्रीमद्भागवत ९/७/४-२३ में यहाँ के पूरे आख्यान का यथावत् काव्यानुवाद है।

महाभारत द्रोणपर्व ५९ में राम का चरित है। वहाँ अनेक गाथाएँ हैं, जिनमें एक है—

अतिसर्वाणिभूतानि रामो दाशरथि र्बभौ।
ऋषीणां देवतानां च मानुषाणां च सर्वशः।
पृथिव्यां सहवासोऽभूत् रामे राज्यं प्रशासति।।१२।।

ऋषि तपःस्थलियों को, देवता स्वर्गलोक को छोड़कर पृथ्वीलोक-भारत भूमि - में आकर साथ रहने लगे थे। राम की तेजस्विता सभी भूतों से बढ़ी-चढ़ी थी। स्वर्ग अन्तरिक्ष और भूलोक में विभाजित पृथ्वी जैसे भूलोक में ही सीमित रह गयी यह इसका भाव है।

कल्पशुद्धि नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मों के यथावत् निष्पादन के लिए उद्देश्य, देश, काल, सामग्री, पुरोहित, विधि आदि विचार का अवसर सभी के जीवन में अनेकधा आता है, व्यष्टिगत, समष्टिगत, अनेक प्रश्न और समस्याओं के समाधान की अपेक्षा भी रहती है, अतः यह भी स्तम्भ भगवान् व्यास ने दिया। इन सबने पुराण के कलेवर को एक नयी आभा दी। व्यास ने यह सब कुछ लेकर सम्पादित पुराण संहिता लोमहर्षण को दी, लोमहर्षण के छः शिष्यों में से तीन शिष्यों ने अपनी-अपनी संहिताएँ तैयार की। व्यास संहिता पूर्णतया इनमें समा गयी। इस प्रकार ये चार संहिताएँ ही मूल मानी गयी। इनके आधार पर ही सभी पुराणग्रन्थों का निर्माण हुआ है।

इनमें प्रथम पुराण ब्रह्म पुराण तथा अन्तिम ब्रह्माण्ड पुराण है। इन चार संहिताओं से प्रथम ब्रह्म पुराण का निर्माण हुआ तो स्वतः सिद्ध है कि क्रम दृष्टि से शेष सभी पुराण परवर्ती हैं तथा संहिताचतुष्टय मूलक हैं। प्रत्यक्ष रूप में इनमें एक भी पुराण व्यास का नहीं है तथापि सभी महापुराणों को जो १८ हैं व्यास निर्मित इसीलिए कहा गया है कि

मूल में तो व्यास की पुराण संहिता ही आती है जो सभी पुराणों की मूल चारों संहिताओं की मूल है।

इन सब पुराणों में भी भिन्नता के अनेक कारण हैं, कथा प्रभाव की भिन्नता, काल की भिन्नता, उद्देश्य की भिन्नता, वक्ता श्रोता मुनियों की भिन्नता तथापि इनमें जो एकसूत्रता के भाव दृष्टि में आते हैं उनका कारण है लोमहर्षण-पुत्र उग्रश्रवा जो इन सबके लिपिकर्ता हैं तथा अनेक बार इन पुराणों को शौनक आदि ऋषियों के गुरुकुलों में सुना चुके हैं।

व्यास प्रणीत न होने पर भी इनकी व्यास के नाम से प्रामाणिकता का आधार भी यही है कि लोमहर्षण तथा इनके पुत्र उग्रश्रवा के द्वारा ही व्यास के मूल विचार प्रसारित हुए हैं, उग्रश्रवा अपने पिता का शिष्य तो है ही व्यास का भी शिष्य है। भले ही पुराणों में कहीं ऐसा स्पष्ट उल्लेख न हो किन्तु शान्तिपर्व के एक विशिष्ट प्रसंग 'नारायणीय आख्यान' की समाप्ति पर सौति उग्रश्रवा ने शौनकादि को कहा—

नारायणीयमाख्यानमेतत्ते कथितं मया।
पृष्टेन शौनकाद्येह नैमिषारण्यवासिसु॥ ३४६/१६
नारदेन पुरा राजन् गुरवे मे निवेदितम्।
ऋषीणां पाण्डवानां च शृण्वतोः कृष्णभीष्मयोः॥ १७

शौनक! नैमिषारण्यवासी ऋषियों के बीच आज आपके पूछने पर मैंने यह 'नारायणीय आख्यान' कहा है जो पहले देवर्षि नारद ने मेरे गुरु व्यास को ऋषियों, पाण्डवों और कृष्ण एवं भीष्म की उपस्थिति में कहा था। इस प्रकार इन महापुराणों का प्रामाण्य व्यास-मूलक है।

भगवान् व्यास की संहिता के आधार के बिना जिन ऋषि-मुनियों ने अपने तपोबल से कथा को जान लिया है, अतः उन-उन मुनियों के स्वतः प्रामाण्य से उन पुराणों की प्रामाणिकता है। जैसे दो नारद पुराण हैं उनमें वेदव्यास के प्रामाण्य से प्रामाण्य वाले पुराण की गणना १८ महापुराणों में है। जिसका प्रामाण्य नारद के प्रामाण्य पर ही है वह उपपुराण है। यह महापुराण उपपुराण की विभाजक रेखा है।

इस प्रकार की मान्यता का आधार भी पुराण ही हैं। कूर्मपुराण में १८ महापुराणों की गणना की पूर्ति पर कहा गया है—

अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु।
अष्टादशपुराणानि श्रुत्वा सङ्क्षेपतो द्विजाः॥ पूर्वभाग १.१६

इनसे भिन्न उपपुराणों का प्रवचन भी मुनियों ने १८ पुराण सुनकर संक्षेप की दृष्टि से किया है। विष्णु पुराण भी यही कहता है—

महापुराणान्येतानि ह्यष्टादश महामुने ! ॥ ३.६.२४
तथा चोपपुराणानि मुनिभिः कथितानि च।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशा(श) मन्वन्तराणि च।
सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च यत् ॥ २५

महामुने! ये मैंने अठारह पुराणों के नाम बोले हैं। इसी भाँति मुनियों ने उपपुराण भी कहे हैं। इन सभी में सर्ग आदि सभी विषय कहे गये हैं।

ग्रन्थ में विष्णु पुराण के द्वारा पठित १८ पुराणों के नाम उत्पत्ति क्रम से दिये गये हैं। कूर्म पुराण के प्रथम अध्याय में ब्रह्मवैवर्त कृष्णजन्म खण्ड १३१/११-२१ में, भागवत १२/७/२२-२४ में भी महापुराण गणना है।

इन पुराणों के नाम भेदों को, महा और उप जैसे विभाग में भी विकल्पता की स्थिति एवं विद्वानों की उलझन को देखते हुए ऐसा आवश्यक लगता है कि इस क्षेत्र में अनुसन्धान होना चाहिये।

य्रहाँ पुराण की स्मृति के लिये नाम के आद्याक्षरों को लेकर अनुष्टुप् छन्द है। उत्तरार्ध के पाठभेद से यह देवी भागवत (१.३.२) में भी उपलब्ध होता है वहाँ 'अ-ना-प-लिं-ग-कू-स्नानि पुराणानि पृथक्-पृथक्' उत्तरार्ध पाठ है।

कूर्मपुराण में १. ब्राह्म २. पाद्म ३. वैष्णव ४. शैव ५. भागवत ६. भविष्य ७. नारदीय ८. मार्कण्डेय ९. आग्नेय १०. ब्रह्मवैवर्त ११. लिङ्ग १२. वराह १३. स्कन्द १४. वामन १५ कूर्म १६. मत्स्य १७. गरुड तथा १८वाँ वायुप्रोक्त ब्रह्माण्डपुराण गिनाया गया है। (पूर्व वि. १/१३-१५) इस अवस्था में 'भविष्यस्य षष्ठत्वं वायुपुराणस्य चाष्टादशत्वमुक्तम्, ब्रह्माण्ड पुराणं तु तत्र नोल्लिखितम्' का क्या अभिप्राय है? संभवतः ओझाजी शैव और भागवत को एक समझते हैं, यदि ऐसा है तो भविष्य के क्रम में अन्तर पड़ेगा, किन्तु इसके साथ ही वायुपुराण भी सत्रहवाँ होगा तथा १८वाँ ब्रह्माण्ड होगा।

मार्कण्डेय पुराण में लगभग यही क्रम है १. ब्राह्म २. पाद्म ३. वैष्णव, ४. शैव ५. भागवत ६. नारदीय ७. मार्कण्डेय ८. आग्नेय ९. भविष्यं १०. ब्रह्मवैवर्त ११. लिंग १२. वराह १३. स्कन्द १४. वामन १५. कूर्म १६. मत्स्य १७. गरुड तथा १८ ब्रह्माण्ड।

यहाँ शैव और भागवत को पृथक् लिया है किन्तु छठे क्रम के भविष्य को ९वें पर ले लिया, आगे वायुपुराण को पूर्णतया छोड़ दिया है। मार्कण्डेय ने प्रायः क्रम संख्या

साथ दी है अतः पद्य में गिने नाम को छोड़ना तथा न गिने नाम को बीच में बढ़ा देना सम्भव नहीं है। सुविधा के लिए मूलपाठ दिया जा रहा है—

अष्टादशपुराणानि यानि प्राह पितामहः ।। १३४/७
तेषां सप्तमं ज्ञेयं मार्कण्डेयं सुविश्रुतम्।

भगवान् ब्रह्मा की निर्मित १८ पुराण हैं यह कहकर इसे ब्रह्मकर्तृक सातवाँ बताया है। अब क्रमशः नाम गणना है—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।।८।।
तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तम्।
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा।।९।।
दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्ग मेकादशं स्मृतम्।
वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कन्दमत्र त्रयोदशम्।।१०।।
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं तथा।
मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम्।।११।।

यहाँ भी वायु नहीं गिना गया है। वस्तुतः संख्या आदि की ये विसंवादिताएँ गम्भीर विचार की अपेक्षा रखती हैं। ओझाजी ने यह छोटा-सा प्रकरण पुराणों के व्यासपरवर्ती किन्तु व्यासमूलक ऐतिहासिक अवतरण को बताने के लिए ही लिखा है। इस पर अपेक्षित विस्तृत विचार पूर्व में कर चुके हैं तथा एक अन्य प्रकार अब देने जा रहे हैं, अतः यह उनका अभिमत मत है यह समझना चाहिये।

भिन्न प्रकार से पुराणावतार

यहाँ भी क्रम और प्रकार तो ओझाजी वही दे रहे हैं जो अभी यह पूरा हुआ है। अन्तर इतना ही है कि प्रदत्तप्रकरण में व्यास-संहिता, उससे रोमहर्षण संहिता पुनः लोमहर्षण के छः शिष्यों में से तीन की संहिता जैसा क्रम रहा है, लोमहर्षण की संहिता के साथ मिलकर ये कुल चार हो जाती हैं, ये चार ही वर्तमान सभी पुराणों का मूल आधार हैं जो सभी उग्रश्रवा द्वारा सम्पादित हैं।

यहाँ भी क्रम लोमहर्षण शिष्यों तक तो यही है किन्तु यहाँ तीन के स्थान पर छः संहितायें बतायी गयी हैं। भागवत का यहाँ का पाठ भी बड़ा अस्त-व्यस्त है श्री श्रीधर स्वामी ने अन्य पुराणों के साथ संवादिता के आधार पर यहाँ व्याख्या नहीं की विशेषतः विष्णु पुराण को भी दृष्टि में रखते जिस पर उनकी व्याख्या भी है, किन्तु उसका भी ध्यान नहीं रखा, इससे यहाँ सारा ही विषय उलट-पलट गया तथा इतिहास की वास्तविकता से

दूर हो गया।

ओझाजी को यह सबकुछ ठीक नहीं लगा, यह विषय भी श्रीमद्भागवत पुराण से भिन्न किसी भी अन्य पुराण में न होने से भागवत का ही है यह भी सिद्ध है। सम्भवतः ओझाजी भागवत का नाम लेकर कुछ कहना नहीं चाहते थे भागवत के लोकविश्रुत स्वरूप के कारण तथा स्वयं की भी उसके प्रति श्रद्धा के कारण।

वेद की अनेक शाखाओं की भाँति पुराणों की भी अनेक शाखाएँ हुई जैसी बात कहते समय जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग करते हैं, उससे इनकी श्रद्धा प्रकट होती है : उनका लेख है—

तदित्थं वेदव्यासकृतानां होत्रुद्गात्रध्वर्य्यथर्वणिक कर्मानुरोधिनीनां चतसृणां याज्ञिक-कर्म-संहितानां पैल-जैमिनि-वैशम्पायन-सुमन्त्वात्मक शिष्य-प्रशिष्य-प्रणाली-भेदेन यथा काले कालेऽनेकाःशाखाः समभूवन् तथैव वेदव्यासकृतायाः स्त्रीशूद्र द्विजबन्ध्वादि सामान्यविधेयानुरोधिन्या एकस्याः पुराणसंहिताया अपि लोमहर्षणात्मक-शिष्य-प्रशिष्य-प्रणालीभेदेन संहिता-चतुष्टयी द्वारा क्रमशः इदानीं प्रतिष्ठितानि अष्टादश निबन्धजातानि विभिन्नाकाराणि प्रासिद्ध्यन्त।

पुराणावतरण का यही मत वेदपुराणादिशास्त्रावतार में क्रमशः वेदशाखोत्पत्ति के बाद 'अथ पुराणावतार' द्वारा बताते हैं तथा इसे सिद्धान्त रूप में स्थापित करते हैं। ऐसे विचार व्यूह में भी उन्हें भागवत का 'स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुति-गोचरा' अनुकरणीय प्रिय सूक्ति की भाँति लगता है जो पुराणसंहिता के विशेषण के रूप में जड़ा गया है। वेदों का वेद पञ्चम वेद इस रूप में कभी प्रवृत्त नहीं हुआ, यह शतप्रतिशत तथ्य है। वेद अद्धातिजनवेद्यविषय के ज्ञाता पुराणवित् की प्रशंसा करता है। यही कारण है कि ओझाजी वेद के प्रमुख चार विषयों में इतिहास को लेते हैं—१. जगद्गुरु वैभव २. पुराण प्रसंग में वे पुराणविद्या को १. त्रैलोक्यविश्वविद्या, २. ज्योतिश्चक्र, ३. भुवनकोश, ४. प्रासङ्गिक तथा ५. वंशावलि रूप में विभाजित करते हैं 'सा सृष्टिविद्येह पुराण-संज्ञया ख्याता' की घोषणा के साथ। निश्चित ही पुराण के विनेय सामान्यबुद्धिजन्य नहीं हो सकते हैं।

उनकी इस ग्रन्थ विशेष के प्रति विद्यमान श्रद्धा यद्यपि सीधा नाम नहीं लेने देती है तथा शास्त्रश्रद्धा पुराणावतरण के इस गड़बड़ प्रतिपादन को सह भी नहीं सकती है अतः वे श्रीधर स्वामी की असद्व्याख्या के नाम पर विषय उठा भी देते हैं साथ ही चाहते भी हैं—अत्रत्यं तत्त्वं पुराणान्तरवचनान्वेषणया निश्चिन्वन्तु विपश्चितः।

यह लोट् प्रयोग आदेश भी है आशीः भी। जब सम्पादन में व्यापृत हूँ तो मेरे लिए आदेश की अनुपालना अनिवार्य हो जाती है कार्याधिकार से भी।

वस्तुतः भागवत का यह विषय मूल में ही असाधु है। सामने रहें अतः भागवत के मूल पद्य उद्धृत कर रहा हूँ—

त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः।
शिंशपायन हारीतौ षड्वै पौराणिका इमे।। १२.७.४
अधीयन्त व्यासशिष्यात् संहितां मत्पितुर्मुखात्।
एकैकामहमेतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम्।। ५
काश्यपोऽहं च सावर्णिः रामशिष्योऽकृतव्रणः।
अधीमहि व्यासशिष्याच्चत्वारो मूलसंहिता।। ६

गीता प्रेस गोरखपुर के मूल संस्करण में ये ५-७ क्रम के पद्य हैं। प्रथम पद्य के तृतीय चरण का पाठ **'वैशम्पायनहारीतौ'** है तथा टिप्पणी में वैशम्पायन के स्थान पर 'शिंशपायन' पाठान्तर बताया गया है। तृतीय पद्य के चतुर्थ चरण का पाठ 'चतस्रोमूलसंहिताः' है यहाँ संख्या मूलसंहिता के विशेषण के रूप में है, ओझाजी के पाठ में चत्वारः पुंल्लिङ्ग का है जो अध्येताओं को बताता है—'काश्यपादयः वयं चत्वारः'। यहीं व्यासशिष्यात् के स्थान पर व्यासपुत्रात् पाठ है।

गीताप्रेस गोरखपुर के सानुवाद प्रकाशन में निम्नलिखित अर्थ किया गया है—

शौनक जी! पुराणों के छः आचार्य प्रसिद्ध हैं—त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन और हारीत।५। इन लोगों ने मेरे पिताजी से एक-एक पुराणसंहिता पढ़ी थी और मेरे पिताजी ने स्वयं भगवान् व्यास से उन संहिताओं का अध्ययन किया था।६। उन छः संहिताओं के अतिरिक्त और भी मूल चार संहिताएँ थीं। उन्हें भी कश्यप, सावर्णि, परशुरामजी के शिष्य अकृतव्रण और उनके साथ मैंने व्यासजी के शिष्य श्री रोमहर्षण जी से जो मेरे पिता थे, अध्ययन किया था।७। श्री श्रीधर स्वामी की भागवत पर अर्थदीपिका टीका है तदनुसार 'अधीयन्त व्यास' श्लोक का भाव है कि—पहले भगवान् व्यास ने छः संहिता बनाकर मेरे पिता रोमहर्षण को दी। रोमहर्षण के मुख से इन त्रय्यारुणि आदि ने एक-एक संहिता का अध्ययन किया। इन त्रय्यारुणि आदि छहों के शिष्य होने से मैंने सभी संहिताएँ पढ़ी।६। कश्यप, मैं रोमहर्षण, सावर्णि तथा परशुराम के शिष्य अकृतव्रण, इस तरह हम चारों ने मूलसंहिताएँ पढ़ी। श्रीधर स्वामी कहते हैं कि यहाँ 'मूलसंहिताः' पद है, इसका अभिप्राय यह हुआ कि संहिता की संख्या बहुत हैं एक या दो नहीं।

यहाँ कश्यप आदि का विशेषण चत्वारः है, इसका अर्थ यह हुआ कि चत्वारः पाठ श्रीधर स्वामी का अभिमत है।

श्रीधर स्वामी की भावार्थदीपिका पर श्री बंशीधर की भावार्थ दीपिकाप्रकाश टीका है। भागवत के इसी अध्याय में २४वें पद्य में १८ महापुराणों के नाम गिना कर संख्या त्रिषट् शब्द से बतायी गयी, त्रिषट् त्रिगुणित षट् अर्थात् १८। इस संख्या को लेकर इसे षष्ठ पद्य के 'एकैकामहमेतेषां' के साथ अन्वित कर यह बताना चाहा है कि तीन-तीन पुराण मिलकर एक-एक संहिता बनी है। इस प्रकार एक-एक संहिता अलग-अलग तीन पुराणों का रूप है। केवल अर्थ की खींचातानी का यह बुद्धि विलास मात्र है। यहाँ इन्होंने 'संहिता' का अर्थ स्पष्ट करने में यह चमत्कार खूब दिखाया है इस स्थिति में ओझाजी यदि श्रीधर स्वामी के लिए 'व्याख्येयश्लोकतात्पर्यार्थापरि ज्ञानमूलकम्' कहते हैं तो उचित ही है, भागवत के दोषों का गूहन करना वाङ्मय के प्रति अवज्ञा ही है। निश्चित ही यहाँ भागवतकार ने विष्णु, वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों से सामग्री ली है साथ ही स्वेच्छाचारिता भी की है—

भागवतकार तथा कृष्णद्वैपायनव्यास

पुराण और इतिहास को दृष्टि में न रखते हुए अपने ही इष्ट विचारों का प्रतिपादन करने के क्रम में अपने पूर्ववर्ती वाङ्मय की घोर अवहेलना प्रायः भागवत में प्रारम्भ से ही है। यहाँ अवतार गणना में वामन, परशुराम, कृष्ण द्वैपायन, दाशरथि राम तथा बलराम कृष्ण का क्रम रखा गया है जो सम्पूर्ण वाङ्मय के विरुद्ध है, जहाँ भगवान् दाशरथि राम से व्यास को पहले गिना गया है—

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥ १.३.२१
नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया।
समुद्र निग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥२२॥

तदनन्तर सत्रहवें अवतार में भगवान् हरि पराशर से सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न हुए (जिनका नाम कृष्ण द्वैपायन व्यास है) इन्होंने मनुष्यों को अल्पमेधावी देखकर वेदवृक्ष की शाखाओं का विस्तार किया॥२१॥ देवहितकारी कार्य (रावण वध आदि) करने के लिए नरदेव-राजा—का रूप लिए जिन भगवान् हरि ने व्यास के अनन्तर (राम नाम से) अवतीर्ण होकर सागर पर सेतुबन्धन आदि वीर कर्म किये॥२२॥

चाहकर भी शास्त्र सङ्गति के मिथ्या नाम से इस पद्यद्वयी का अन्य अर्थ सम्भव नहीं है, व्यास को सत्रहवाँ क्रम दिया गया है। इसके अनन्तर 'अतः परम्' (=इसके

बाद) कह कर राम की गणना की गयी है तथा इसके पश्चात् बलराम और कृष्ण को १९, २० वाँ बताया गया है। स्पष्ट है कि भगवान् राम १८ वें प्रमाणित होते हैं।

केवल 'व्यास' नाम होता तो भी ठीक था, भगवान् राम के पूर्व २३ व्यास हो चुके थे, २४वें व्यास भगवान् वाल्मीकि ने राम का चरित ही नहीं गाया अपितु वे भगवती सीता के आश्रयदाता, संरक्षक, रहे तथा रामपुत्रों लवकुश के संस्कार गुरु भी थे। इन वाल्मीकि व्यास से ही शक्ति को व्यासाधिकार परम्परा में व्यासत्व की दीक्षा मिली। शक्ति भगवान् वसिष्ठ के पुत्र, पराशर के तथा जातुकर्ण्य के पिता एवम् कृष्ण द्वैपायन के पितामह थे। जातुकर्ण्य कृष्ण द्वैपायन के पितृव्य (चाचा) थे साथ ही दीक्षागुरु भी।

पराशर विष्णु पुराण में कहते हैं—

ऋक्षोऽभूद् भार्गव स्तस्माद् वाल्मीकिर्योऽभिधीयते। ३.३.१६
तस्मादस्मत् पिताशक्ति र्व्यासस्तस्मादहं मुने।
जातुकर्णोऽभवन्मत्तः कृष्णद्वैपायन स्ततः ॥१७
अष्टाविंशतिरित्येते वेदव्यासाः पुरातनाः।...१८

यहाँ पुरातन व्यासों के क्रम-पूर्वक कथन के साथ अन्त में २८वीं संख्या कृष्णद्वैपायन के नाम बतायी गयी है, अतः २७वें जातुकर्ण २६वें पराशर, २५वें शक्ति तथा २४वें वाल्मीकि होते हैं। वाल्मीकि पिता के नाम वल्मीक के आधार पर है, निजी नाम 'ऋक्ष' है।

यह गणना वायु ब्रह्माण्ड आदि पुराणों में अनेकधा है। ऐसी स्थिति में इस इतिहास के अकारण विरोध में जाकर क्या कहना चाहते हैं। व्यास होते तो ये भी राम के पूर्व में सिद्ध किये जा सकते थे पर ये सत्यवतीनन्दन भी हैं जो सत्यवती विचित्रवीर्य तथा चित्राङ्गद की जननी एवं धृतराष्ट्र पाण्डु विदुर की दादी है। इन्हें दाशरथि राम के पूर्व कैसे ले जाया जा सकता है।

त्रयी (वेद) जिन्हें श्रुतिगोचर नहीं हो सकता है उन स्त्रियों, शूद्रों तथा द्विजबन्धुओं के (अर्थात् नाममात्र के द्विज ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्यों) के श्रेय (परम कल्याण मुक्ति) के लिए कृपालु व्यास ने भारत की रचना की (१.४.२५) तथा भारत के नाम से आम्नाय (वेद तथा वैदिक परम्परा) का रहस्य प्रस्तुत किया (२८) वे व्यास अशान्त थे। उनके मन में आया कि मैंने अच्युत के प्रिय भागवत धर्मों का कथन नहीं किया, सम्भवतः यही अशान्ति का कारण हो। दैवयोग से नारद वहाँ आ जाते हैं, व्यास के कष्ट को सुनकर वे भी यही कहते हैं—

भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम्।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम्॥ १.५.८

आपने प्रायः भगवान् के निर्मल यश का गान नहीं किया है, जिस से हरि तुष्ट न हों मैं उस दर्शन को व्यर्थ मानता हूँ। यह भागवत का बीज है।

महाभारत में व्यास की प्रतिज्ञा है—

वासुदेवस्य माहात्म्यं पाण्डवानां च सत्यताम्। आदि १.१००
भगवान् वासुदेवश्च कीर्त्यतेऽत्र सनातनः।
स हि सत्यमृतं चैव पवित्रं पुण्यमेव च॥२५६
शाश्वतं ब्रह्म परमं ध्रुवं ज्योतिः सनातनम्।
यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीषिणः॥२५७
असच्च सदसच्चैव यस्माद् विश्वं प्रवर्तते।
सन्ततिश्च प्रवृत्तिश्च जन्ममृत्युपुनर्भवाः॥२५८
अध्यात्मं श्रूयते यच्च पञ्चभूतगुणात्मकम्।
अव्यक्तादि परं यच्च स एव परिगीयते॥२५९

यहाँ वासुदेव की महिमा वर्णित है, सनातन भगवान् वासुदेव का यहाँ कीर्तन है सत्य, ऋत, पवित्र, पुण्य, शाश्वत, ब्रह्म, परम, ध्रुव, सनातन ज्योति; वहीं है। मनीषी उसके दिव्य कर्मों की कथा कहते हैं, यह सत् असत् और सदसत् विश्व की प्रवृत्ति उसी से है, जो कुछ भी अध्यात्म विश्व है जो भी पञ्च भूतात्मक भौतिक विश्व है तथा जो कुछ भी अव्यक्त है, इन सभी रूपों में उसी का गान है।

महाभारत में सर्वत्र यही सबकुछ पद-पद में है। वसुदेव का आत्मज वासुदेव, यह नाम दो बार लेकर व्यास स्पष्ट कर देते हैं कि वृष्णिवंशोद्भव वसुदेवनन्दन कृष्ण ही यहाँ अभीष्ट हैं। क्या महाभारत और व्यास की भागवत में यह अवमानना नहीं है? यह और ऐसे प्रसङ्ग सोद्देश्य हैं। भक्ति को येनकेन प्रकारेण सर्वोच्च प्रमाणित करने का भाव ही उद्देश्य है जबकि भक्ति की वरेण्यता सर्वत्र है।

एक उदाहरण प्रमाद का है। भागवत में ९ वें स्कन्ध के २२ वें अध्याय में बताया गया है कि जरासन्ध के पुत्र सहदेव के पश्चात् २२ राजा सहस्र वर्ष शासन करेंगे (४६-४९ पद्य)। इसके पश्चात् पाँच प्रद्योत १३८ वर्ष, दशशिशुनाग ३६० वर्ष शासन करेंगे, इनके पश्चात् १०० वर्षों का नन्दों का शासन होगा (१२.१.१-११ पद्य)। इसके अनन्तर परिक्षित् जन्म से नन्द के अभिषेक तक का समय इस पद्य से बताया गया है—

आरभ्य भवतो जन्म भावन्नन्दाभिषेचनम्।
एतद् वर्षसहस्रं तु शतं पञ्चदशोत्तरम्॥ १२.२.२६

शुक परिक्षित् को कह रहे हैं कि आपके जन्म से लेकर नन्द के अभिषेक का काल १११५ वर्षों का है।

यहाँ का यह योग १११५ पूर्व में पृथक्-पृथक् दिये राजवंशों के योग (१०००+१३८+३६०=) १४९८ से पृथक् प्राप्त होता है जबकि तीनों का योग बताने के लिए ही यह पद्य है।

अन्य पुराणों में १०००+१३८+३६२ वर्ष हैं जिनका योग १५०० वर्ष वहाँ बताया गया है। भागवत में केवल दो ही वर्ष कम है शिशुनागों के ३६२ के स्थान पर ३६० होने से। इसे भागवत की अनवधानता ही कहना पड़ेगा, यहाँ कोई सिद्धान्त अथवा मतभेद वाली बात भी नहीं है। विवश होकर श्री श्रीधर स्वामी को लिखना पड़ा—

वर्ष सहस्रं पञ्चदशोत्तरं शतं चेति कयापि विवक्षयावान्तरसंख्येयम्। वस्तुतस्तु **परिक्षिन्नन्दयोरन्तरं द्वाभ्यां नूनं वर्षाणां सार्धसहस्रं भवति।** यतः परिक्षित्समकालं मागधं मार्जारिमारभ्यरिपुजयान्ता विंशतिराजानः सहस्रं वत्सरं भोक्ष्यन्तीत्युक्तं नवमस्कन्धे 'ये बार्हद्रथभूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम्' इति। ततः परं पञ्च प्रद्योतना अष्टत्रिंशोतरं शतम्। शिशुनागाश्च षष्ट्युत्तरशतत्रयं भोक्ष्यन्ति पृथिवीमित्यैवोक्तत्वात्।

विष्णु पुराण की व्याक्या में श्री स्वामी 'पञ्चशतोत्तरं वर्ष सहस्रम्' लिखते हुए विष्णु पुराण के ही राजकुलों के पृथक् पृथक् भोग्य वर्षों के आधार पर प्राप्त १५०० वर्षों की संख्या प्राप्त करते हैं तथा योग में हेतु बताते हैं 'पञ्चशताब्दत्वस्योक्तत्वात्। जो कुछ जिस प्रकार पढ़ दिया गया है वह कर्ता के प्रमाद से अथवा लिपिकर्ता के, इस प्रकार के अनुसन्धान के बिना ही उसके जैसे तैसे भी समर्थन की वृत्ति से भाविपीढ़ियों को भ्रम ही मिला है, जैसे यहीं विष्णुचितीय में एतद्वर्ष सहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम्' (४.२४.१०४) में पञ्चाशदुत्तर की व्याख्या में लिखा गया है 'एतद् वर्षसहस्रं पञ्चाशदधिकं शुद्धक्षत्रवंशोपेतं ज्ञेयम्। ततः प्रद्योतनादि वंशान्तरसञ्चारस्योक्तत्वादिति-अर्थः, न तु कालमात्रस्य संख्येयम्'। इसका अभिप्राय है कि यहाँ विष्णु पुराण में १०५० वर्ष इस अभिप्राय से बताये गये हैं कि ये 'शुद्ध क्षत्रियवंश' वर्ष हैं, इसके पश्चात् प्रद्योतन आदि के वंश होंगे। वस्तुतः यह पूर्ण संख्या योग नहीं है। यह अशुद्ध व्याख्या है।

वास्तविकता यह है कि 'पञ्चशतोत्तरम्' ही पाठ सम्पूर्ण योग फल का है किन्तु प्रमाद वश कहीं 'शतं पञ्चदशोत्तरम्' तो कहीं पञ्चाशदुत्तरम् हो गया है। 'पञ्चशतोत्तर' से

परिचित व्यक्ति भागवत के पद्य को १५१० वर्षों के अनुकूल व्याख्या से प्रस्तुत करता है, १०००+५००+१० संख्या वहाँ मानी गयी है, यह भी प्रमाद ही है अज्ञानजन्य, पञ्च विशेषण से युक्त 'शतम्' शब्द शतम् न होकर 'शतानि' होगा भाषा के स्वरूपानुसार। समस्त हो तो भी सन्दर्भ देखकर ही विग्रह किया जाता है। अतः भागवत के ये मूलगत दोष हैं।

रोमहर्षण के छः शिष्य थे, इसका स्रोत ब्रह्माण्ड वायु विष्णु पुराण हैं, अतः भागवत में इन्हीं में किसी से यह नामावलि ली गयी है, यहाँ भी भयंकर प्रमाद है, कश्यप अकृतव्रण एक ही व्यक्ति है, अकृतव्रण नाम है कश्यप गोत्र है। भागवत में ये दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति माने गये हैं। आत्रेय सुमति के स्थान पर त्रय्यारुणि ले लिया गया। शिंशपायन और हारीत कल्पना जन्य है। १५ वें व्यास त्रय्यारुण हैं जैसा कि विष्णु पुराण में व्यासगणना में कहा गया है—

त्रय्यारुणः पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः। ३.३.१६

पन्द्रहवें परिवर्त में त्रय्यारुण तथा १६ वें में **धनञ्जय व्यास थे। इन व्यास को** २८वें परिवर्तन के व्यास कृष्ण द्वैपायन के शिष्य रोमहर्षण का शिष्य बना दिया। सुशर्मा शांशपायन को वैशम्पायन अथवा शिंशपायन कर दिया गया। हारीत का पुराण संहिताकार के रूप में कहीं उल्लेख नहीं है। इसी भाँति वायु पुराण आदि में छः में से तीन शिष्य ही संहिताकार कहे गये हैं। भागवत में प्रत्यक्षतः तो नहीं किन्तु सङ्केत रूप से सभी को संहिताकार बता दिया गया है। यदि संहिता है ही नहीं तो शिष्य को क्या दिया जावेगा। दूसरी तरफ कहा जाता है कि 'चतस्रः मूलसंहिताः' ये कौनसी चार संहिता हैं। यदि व्यास संहिता को रोमहर्षण की संहिता के साथ लेते हैं रोमहर्षण के शिष्यों के समक्ष जिनमें उग्रश्रवा भी है केवल दो संहिताएँ हैं। यदि छः शिष्यों की संहिताएँ हो जाती हैं तो केवल उग्रश्रवा के समक्ष ८, ७ अथवा छः संहिताएँ हैं। ऐसी स्थिति में 'चतस्रः मूलसंहिताः' का औचित्य कैसे होगा?

इस प्रकार की विसङ्गति को दूर करने के लिए श्री स्वामी ने 'चत्वारः' पाठ मानकर समाधान की चेष्टा की कि अध्येता ४ हैं मूलसंहिता की संख्या न देकर बहुवचन का प्रयोग देकर स्वतन्त्रता दे दी—अब अर्थ होगा हम चार 'मूलसंहिताओं' का अध्ययन करते हैं। किन्तु समाधान अब भी नहीं हुआ, व्यास और रोमहर्षण की कुल दो संहिताएँ हैं अतः 'मूलसंहिते' (=दो मूल संहिताएँ) जैसा पाठ होना चाहिये था। बहुवचन है तो न्यूनातिन्यून ३ संहिताएँ चाहिये, वह तीसरी किसकी है?

संहिताओं के साथ अध्येताओं के विषय में भी संख्या को लेकर प्रश्न है। शिष्य छः हो सकते हैं अथवा सात हो सकते हैं चार किसी भी स्थिति में नहीं। उग्रश्रवा के साथ कश्यप, सावर्णि, राम शिष्य अकृतव्रण, ये तीन हैं, त्रय्यारुणि, वैशम्पायन तथा हारीत का क्या हुआ? इन विसङ्गतियों को देखकर श्री स्वामी ने चतस्रः के स्थान पर चत्वारः पाठ किया तथापि समाधान नहीं निकाला बंशीधरी में भी 'कश्यपोऽहमुग्रश्रवाः सावर्णि रकृतव्रणश्चतुर्थ एते चत्वारो वय मित्यर्थः' के भाग से स्वामी के वचनों का समर्थन तो ज्ञात हो रहा है किन्तु कण्ठतः 'चत्वारः' पढ़ा गया है यह ज्ञात नहीं हो पा रहा है। कारण यह है कि ये अवान्तर संहिता की, एक ही संहिता की अङ्गभूत अनेक संहिताओं की संख्या के साथ-साथ अनेक प्रकार चार संहिताओं की, पाँच संहिताओं की, छः संहिताओं की चर्चा भी करते हैं। इस प्रकार की चर्चा से यह तो निश्चित है कि इस सन्दर्भ को ये भी यथावत् नहीं समझ पाये हैं।

श्री श्रीधर स्वामी का व्यास द्वारा छः संहिताओं की निर्मिति कर रोमहर्षण को पढ़ाने जैसी बात, फिर रोमहर्षण से उनमें त्रय्यारुणि आदि का एक एक संहिता पढ़ना, तथा इनसे—अर्थात् गुरुशिष्यों से सातों संहिताओं का उग्रश्रवा द्वारा ग्रहण करना, बताना सर्वथा निर्मूल है। वेदशाखाओं में जो विधि है वही यहाँ है। ऋत्विक् कर्मकी दृष्टि से व्यास वेद के लिए चार शिष्य लेते हैं पुराण के लिए एक शिष्य लोमहर्षण को लेते हैं। इस प्रकार पाँचों अपने स्वीकृत विषय के प्राधान्य के साथ सभी विषयों को लेते हैं, सभी सभी में निष्णात होते हैं किन्तु शिष्य अधिकार विषय में ही बनाते हैं। उन शिष्यों को भी अपने अधिकार विषय में ही शिष्य दीक्षा दी जा सकेगी। किसी को विषयान्तर पढ़ना है तो स्वविषय के ज्ञान के पश्चात् अन्य गुरु से दीक्षा पूर्वक वह विषय पढ़ेगा। ज्ञान को वह उपयोग के लिए प्राप्त करेगा शास्त्रानुसन्धान हेतु किन्तु उत्तरोत्तर शिष्य विस्तार का अधिकार उसे नहीं है। इस दृष्टि से व्यास एक ही संहिता रचते हैं। व्यास शिष्य रोमहर्षण की भी एक ही संहिता है वहीं छः शिष्यों को मिलती है, वे अपनी मति के अनुसार उसे लेते हैं तथापि संहिताकार तीन ही होते हैं। पुराण का जनसमुदाय में कथा-माध्यम से शास्त्र ज्ञानवर्धन तथा जीवन में पुरुषार्थ साधना में सामर्थ्य प्राप्त करने का उद्देश्य है। अतः वेद की रक्षा के लिए अनिवार्य दीक्षा जैसी आवश्यकता पुराण के लिए अपेक्षित नहीं है। फलतः जो भी रोमहर्षण को भगवान् व्यास से प्राप्त हुआ उसे शिष्यों में भली भाँति सङ्क्रान्त किया, उन तीन शिष्यों की प्रतिभा का फल मिलना ही था, उसे साथ लेकर पुराण विद्या के लिए अपेक्षित ज्ञान के लिए पूर्णतया उपयुक्त इन चार संहिताओं से

लोकव्यवहारोचित ग्रन्थ देने के विचार से निदर्शन रूप में ब्रह्मपुराण सबसे पूर्व जन साधारण के समक्ष रखा। तीन शिष्यों के साथ उग्रश्रवा भी रोमहर्षण को प्राप्त था। इन पाँचों ने अपना पुराण रचना का कार्य किया। यह पराशर का निष्कर्ष था जिसे भागवत सही रूप में नहीं दे पाया। इसी भाव से ओझाजी ने प्रकारान्तर से पुराणावतार बताने के क्रम में इसे रखा भी, इतिहास को मनमाने ढंग से लेकर चलने की वृत्ति को प्रसार-प्रचार के प्रतिकूल समझकर बिना कुछ कहे प्रतिबन्ध जैसा संकेत भी कर दिया जो अनिवार्य था, अन्यथा भागवत मत के आधार पर नाना मतवाद खड़े हो जाते।

भाषा की अपूर्व निधि, अभिव्यक्ति का कौशल, वाङ्मय के सभी पक्षों के सहस्रशः ग्रन्थों का बोध, भगवान् में अत्यन्त गहरी अटूट श्रद्धा की भाव राशि पैदा करने का सङ्कल्प और सामर्थ्य इस पुराण में है, 'विद्यावतां भागवते परीक्षा.' अक्षरशः ठीक है, अनेक मन्त्रों के ब्राह्मण और उपनिषदों के सहृदयहृदयरोचक भावानुवाद शब्दानुवाद यहाँ हैं। सारी विशेषताओं का गिनाना यहाँ न सम्भव है न उसका यह स्थान ही है, पुराण की पञ्चलक्षणात्म रमणीय कृति है। काव्य महाभारत भी है रामायण भी है किन्तु काव्य के नाम पर इतिहास की विकृति उनमें राई रत्ती भी नहीं है। यहाँ सम्भवतः काव्यत्व का विघात अनुकृति, शब्द राशि भावों की पुनरावृत्ति में ही मान लिया गया है। अतः ऐतिह्य प्रसङ्गों को भी बदल दिया, ये दोष पुराण विद्या में घातक हैं इतिहास के दूषक हैं। आज प्राप्त सभी पुराण महाभारत के प्रशंसक हैं, इसे इतिहास का निर्दुष्ट निर्मल स्रोत मानते हैं, उन्हें अकारण बदल देना महान् दोष है। पुराण अवतरण वस्तुतः असह्य है जो इस ऐतिह्य विकृति के साथ है। यह आदर्श न बने यही इस प्रसङ्ग का आशय है।

आठ नौ वर्ष पूर्व 'वेद विज्ञान विद् गुरुशिष्यत्रयी पढ़ रहा था। ओझाजी के मुद्रित ग्रन्थों के विवरणात्म सूची पत्र में 'पुराणनिर्माणाधिकरण' के विषय में सूचना थी कि डॉ. दयानन्द भार्गव के सम्पादकत्व में डॉ. निधि गुप्ता द्वारा इस ग्रन्थ का अनुवाद कार्य चल रहा है। यह सूचना सन् १९९४ की थी। डॉ. निधि ब्यावर, दयानन्द बालिका महाविद्यालय में संस्कृत प्रवक्तृत्वेन कार्यरत थी। मैंने कार्य की प्रगति के विषय में पूछा तो ज्ञात हुआ अभी नहीं हो रहा था। मैंने उत्साहित किया अपनी पुस्तक भी दी किन्तु उस समय वह कुछ नहीं कर पायी। इसी समय मैं जयपुर आ गया तथा सरकार द्वारा उस महाविद्यालय के सेवागृहीत कर लिये जाने से वह भी ब्यावर के बाहर चली गयी। मैं चाह रहा था विश्वविद्यालय में कोई एतदर्थ आगे आवे।

अकस्मात् डॉ. प्रभावती चौधरी निदेशक, पण्डित मधुसूदन ओझा शोधप्रकोष्ठ,

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर की दूरभाषण पर सूचना मिली कि मैं पुराणनिर्माणाधिकरणम् का अनुवाद भेज रही हूँ। मुझे मूलग्रन्थ की शुद्धि सहित सम्पादित सानुवाद प्रति शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशन हेतु चाहिये। २० अगस्त को उनकी भेजी पुस्तक प्राप्त हो गयी। इस समय दो तीन पुस्तकों का कार्य चल रहा है। पूर्ण व्यस्तता में भी मैं कार्य में जुट गया। जुटना ही था प्रकोष्ठ का कार्य, जिसका मुझ पर अधिकार है, साथ ही पुराण सम्बन्धी कार्य जिसे मांगकर लेने की इच्छा भी बनी रहती है। इस समय एकमात्र यही इच्छा है कि ओझाजी के ग्रन्थों का नियमित प्रकाशन हो, अधिकारी विद्वानों द्वारा। आशा का केन्द्र यह मधुसूदन प्रकोष्ठ ही है। बड़ी प्रसन्नता है यहाँ नियमित गतिविधियाँ चल रही है, उसके साथ कदम मिलाकर चलने में सन्तोष और आनन्द की अतुल अनुभूति होती है।

ये गतिविधियाँ तीव्रता और व्याप्ति लें, डॉ. प्रभावती को यह शुभाशिष देते हुए इस कार्य के लिए कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

डॉ.छैलसिंह से आशा करता हूँ कि पुराणोत्पत्ति प्रसङ्ग कार्य प्रारम्भ कर दें, अपने समर्थ गुरु डॉ. सुथार का आशीर्वाद उन्हें सदा प्राप्त हैं साथ ही मेरा योग भी।

संस्कृत विभागाध्यक्ष आचार्य सत्यप्रकाश दूबे तथा सम्पूर्ण सङ्काय के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। इति शम्।

अनन्त शर्मा

६ सितम्बर २०१३

अध्यक्ष
भट्ट मथुरानाथशास्त्रि साहित्य पीठ
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
मदाऊ, जयपुर

अनुवादकीय

विद्यावाचस्पति पण्डित मधुसूदन ओझा वेद के स्वतन्त्रप्रज्ञ, समीक्षणशिरोमणि विद्वान् थे। उन्होंने वेदार्थ के सर्वथा अभिनव चिन्तन का राजमार्ग प्रस्तुत किया है। वेद तथा ब्राह्मणग्रन्थों के अन्तःसाक्ष्यों से वैदिक तत्त्वों की विवेचना करने की उनकी पद्धति प्राचीन होते हुए भी जिस विधि से प्रस्तुत की गयी है सर्वथा विलक्षण प्रतीत होती है।

यहाँ उनकी पुराणदृष्टि को प्रमुख रूप से बताने का यत्न है जिससे इस लघुकाय किन्तु असाधारण वैशिष्ट्य से पूर्ण ग्रन्थ को सरलता से समझा जा सके।

सर्वप्रथम वे यह चौंकाने वाला तथ्य सामने रखते हैं कि ब्रह्माण्डपुराण नाम का एक वेद था। यह ऐसा ही नाम है जैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद नाम हैं।

ब्रह्माण्डपुराण वेद उस काल की रचना है जब अनेक मन्त्रों और ब्राह्मणों का भी आविर्भाव नहीं हुआ था। स्पष्टीकरण तथा प्रामाणिकता के लिए वे शतपथ ब्राह्मण का प्रघट्टक 'ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस.....व्याख्यानानि' उद्धृत करते हुए बताते हैं कि यहाँ आया 'पुराण' नाम इस 'ब्रह्माण्ड पुराण' वेद को ही बना रहा है। यह पुरावृत्त परम्परा को बताने वाला है साथ ही सृष्टि विद्या सम्बन्धी विचार भी देता है अतः इसका यह 'ब्रह्मार्ण्डपुराणवेद' नाम है।

अपने इसी विचार को वे मत्स्यपुराण के उद्धरण से भी स्पष्ट करते हैं जहाँ बताया गया है कि ब्रह्मा ने सर्वप्रथमं सभी शास्त्रों के पूर्व पुराण का स्मरण किया तदनन्तर वेदों का उच्चारण किया। यह पुराण शतकोटि विस्तार वाला था। बृहन्नारदीयपुराण द्वारा तो वे उस पुराण का नाम भी 'ब्रह्माण्ड पुराण' बता देते हैं। यह ब्रह्माण्ड पुराण ही कालान्तर में पुराण के १८ प्रतिपाद्य विषयों के आधार पर १८ महापुराणों के रूप में आया। इन १८ महापुराणों में अन्तिम का नाम ब्रह्माण्ड पुराण है। यह बताकर वे यह बता देना चाहते हैं कि यह 'ब्रह्माण्डपुराण' पुराण है तथा यह जिससे प्रकट हुआ है वह 'ब्रह्माण्डपुराण' वेद है। इस प्रकार दोनों का अन्तर स्पष्ट है।

वैदिक सृष्टि विद्या का नाम पुराण है। वेद रूप में इस 'पुराण' का स्थान प्रथम है। ब्रह्म अर्थात् वेद की व्याख्या ब्राह्मण है। व्याख्येय की मुख्यता तथा व्याख्या की गौणता नाम से भी तथा स्वरूप से भी स्पष्ट है। इन ब्राह्मणों में विद्यमान आख्यान प्रथमतः उस पुराण-वेद=ब्रह्माण्डपुराण वेद से ही लिये गये थे। कालान्तर में जब अतिविस्तीर्ण वह 'पुराण वेद' लोगों की स्मृति में नहीं टिक पाया तथा इसके भिन्न-भिन्न संहिताओं के रूप बनने लगे तब उन ब्राह्मणों से आख्यान तथा अन्य विषय इन पुराणों में आने लगे इसे ओझाजी ने निम्नलिखित रूप में बताया है—

तत्र ब्राह्मणेषु यद्यपि महर्षिभिरेवाख्यातान्याख्यानानि, अथापि नैतानि ब्राह्मणग्रन्थकर्तृमहर्षिकल्पीनि विज्ञायन्ते। मन्त्रस्मारित प्रयोग समवेतार्थोपपादनोपयुक्त्या तदुपानात्तेषां मन्त्ररचनोत्तरकालिककल्पना विषयत्त्वासम्भवात् तस्याच्चिरन्तनाद् ब्रह्माण्डपुराणाद् (अर्थात् ब्रह्माण्डपुराणवेदात्) ब्रह्मणा प्रस्तुतादेवैतानि सङ्कलितानि।

यह तथ्य संसार के समक्ष पहली बार आया है जो ओझाजी की प्रज्ञा की उपज्ञा है।

जैसे ब्रह्मा की 'ब्रह्माण्ड पुराण वेद संहिता थी' वैसी इस द्वापर में श्रीकृष्ण द्वैपायन की एक पुराण संहिता थी जिससे वर्तमान पुराणों का विकास हुआ।

पुराणवित् पण्डित अनन्त शर्मा ने 'पुराण, वेद, वेदव्यास और उनकी परम्परा' नामक शोध-प्रबन्ध में सप्रमाण सिद्ध किया है कि ''व्यास अठारह पुराणों के रचनाकार नहीं हैं, अपितु अठारह प्रकार से परिच्छिन्न पुराणसंहिता के रचनाकार हैं। ये व्यास वसिष्ठ के प्रपौत्र, शक्ति के पौत्र, और पराशर के पुत्र थे। इनके शिष्य सूतपुत्र लोमहर्षण थे। लोमहर्षण इस पुराणसंहिता का पुनः सम्पादन करके इसे सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, वंश्यचरि, मन्वन्तर, इन पाँच से परिच्छिन्न संहिता बनाते हैं जो लोमहर्षणीय संहिता कहलाती है।

लोमहर्षण अपनी इस संहिता का प्रवचन अपने छह शिष्यों को कहते हैं। उनमें से तीन शिष्य अपनी-अपनी संहिता तैयार करते हैं। लोमहर्षण की संहिता के साथ ये कुल चार हो जाती हैं।

ये चार संहिताएँ ही वर्तमान सभी पुराणों की मूल है ऐसा स्पष्ट उल्लेख विष्णु पुराण में महर्षि पराशर का है। आज ये चार संहिताएँ नहीं मिलती हैं।

लोमहर्षण ऋषियों के आश्रमों में जा-जा कर पुराण सुनाते हैं। आश्रम अनेक हैं, अतः वहाँ के कुलपति तथा ऋषियों की समय-समय पर की गयी जिज्ञासाओं के उत्तर में कथा का क्रम भिन्न-भिन्न हो जाता है।

कभी-कभी लोमहर्षण अपने पुत्र उग्रश्रवा को भी कथा सुनाने हेतु भेज देते हैं। उग्रश्रवा की परीक्षा की दृष्टि से ऋषि प्रारम्भ में ही नाना प्रकार के प्रश्न कर लेते हैं। उनके प्रश्नों के उत्तर के अनुक्रम में उग्रश्रवा कथा कहते हैं। वे कही गयी इन कथाओं को घर पर आकर लेखबद्ध भी कर लेते थे। अतः किसी एक ही पुराण के दो-दो अथवा उससे भी अधिक क्रम हो जाते थे। एक क्रम लोमहर्षण का था ही। यह एक ही पुराण की भिन्न रूपता का कारण रहा है। इनमें कहीं कोई प्रक्षेप नहीं है। यह ओझाजी की सुस्पष्ट मान्यता है। वे यहाँ अन्य मत भी प्रस्तुत करते हैं। ये मत ठीक नहीं है, यह इस प्रकार मत प्रस्तुत करने से समझ में आ जाता है, जैसे—

तां (लौमहर्षणीं नाम संहितां) च पुनः षड्भ्यः स्व शिष्येभ्यो ददौ (लोमहर्षणः), १ ते यथा १ सुमतिः २ अग्निवर्चाः ३ मित्रयुः ४ सुधर्मा ५ अकृतव्रणः ६ सोमदत्तिः। एत एव गोत्रनाम्नां क्रमेण आत्रेयः भारद्वाजः वसिष्ठः शांशसापयनः काश्यपः सावर्णिः इत्याख्यायन्ते। त एते षडपि पुनस्तस्या लौमहर्षण्या मूलसंहिताया आदिसंहिता याश्च बादरायण्या आधारेण स्वस्वेच्छानिबद्धाः षट्संहिता रचयामासुः।.....तदित्थं साकल्येनाष्टौ संहिताजाताः इति केचित्।

इस 'इति केचित्' के द्वारा कतिपय अन्य लोगों का मत ओझाजी ने दिया। इसके साथ ही वे वायु और विष्णु पुराणों के अनुसार चार संहिताओं की पुष्टि करते हैं—

वायुविष्णुपुराणयोस्तु चतस्र एव संहिता उच्यन्ते। इस प्रकार इन चार संहिताओं का क्रम बताकर तथा इनके आधार पर ही उग्रश्रवा के द्वारा पुराण कथा का विस्तार बताकर ओझाजी ने पुराणावतार का पूरा क्रमिक इतिहास यहाँ बता दिया है।

स्थान-स्थान पर भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास को इन पुराणों ने ही १८ पुराणों का रचयिता कहा है उसका भी समाधान इससे ही ओझाजी कर देते हैं कि इन सभी पुराणों की ये संहिताएँ,जो लोमहर्षण तथा उनके तीन शिष्यों की निर्मित है पूर्णतया आधार हैं, इनका आधार व्यास संहिता है अतः इस मूल आधार को लेकर उग्रश्रवा १८ पुराणों को व्यास निर्मित कह देते हैं जो परम गुरु के प्रति कृतज्ञता का सहज भाव है।

पद्मपुराण के प्रमाण पर ओझाजी बताते हैं कि लोमहर्षण १. ब्राह्म २. पाद्म ३. वैष्णव ४. कौर्म ५. मात्स्य ६. वामन ७.वाराह ८. ब्रह्मवैवर्त ९. नारदीय और १०. भविष्य पुराण सुनाकर जब आग्नेय पुराण सुना रहे होते हैं तो वहाँ नैमिषारण्य में आये हुए बलभद्र इन्हें कथा सुनाते देखते हैं। वे देखते हैं कि

सभी ऋषि नीचे आसन पर बैठे हैं तथा लोमहर्षण उनकी अपेक्षा उच्च आसन पर हैं यह देखकर वे क्रोध में भर कर सूत को मार डालते हैं। शोकाकुल ऋषि बलराम को बताते हैं कि यह ठीक नहीं हुआ है तब बलराम उग्रश्रवा की विद्वत्ता बता कर उसे उस आसन पर बैठाकर शेष कथा सुनाने को कहते हैं। यहाँ ओझाजी के लेख का यह अंश द्रष्टव्य है—

तत्रावशिष्टमाग्नेयं श्रावयन्तमेवैनं शूद्रत्वाद् उच्चासनायोग्यमप्युच्चासनासीनं दृष्ट्वा क्रोधाकुलितो जघान। अब वे पद्मपुराण उत्तर खण्ड के भागवत महात्म्य के पद्य उद्धृत करते हैं। यहाँ इतना ही बताया गया है—

तत्र सूतं समासीनं दृष्ट्वा त्वध्यासनोपरि।।४।। यहाँ शूद्र जैसा शब्द नहीं है। यही प्रसङ्ग भागवतपुराण के दशम स्कन्धके ७८ वें अध्याय में भी है वहाँ कहा गया है—

अप्रत्युत्थयिनं सूतमकृतप्रह्वणाञ्जलिम्।
अध्यासीनं च तान् विप्राँश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः।।२३
कस्मादसाविमान् विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः।
धर्मपालाँस्तथैवास्यान् वध मर्हति दुर्मतिः।।२४

यहाँ बताया गया है सूत न तो बलराम के आने पर खड़ा हुआ और न उसने उन्हें प्रणाम किया, वह विप्रो की अपेक्षा उच्च आसन पर था, बलराम ने सोचा कि यह तो हम से भी जो धर्मरक्षक हैं, उच्च आसन पर हो गया अतः वध दण्ड का पात्र है।

बलराम वेद, उपवेद, वेदाङ्ग आदि सभी शास्त्रों के विद्वान् थे। युग-युगों से प्रचलित परम्परा के ज्ञाता थे। सूत के पुराणाधिकार से पूर्ण परिचित थे तथापि वे ऐसा दुष्कृत्य कर बैठते हैं निश्चित ही इसमें कारण वैयक्तिक अभिमान, मिथ्या अहङ्कार तथा क्रोध पर नियन्त्रण का अभाव है। वे शास्त्र संस्कारित तो थे ही, ऋषियों के कथन से वे अपनी भूल समझ गये तथा इसका प्रायश्चित्त भी उनके द्वारा कर लिया गया था। ओझाजी ने १०½ पुराणों का कथन लोमहर्षण द्वारा तथा शेष ७½ का प्रवचन उग्रश्रवा द्वारा किया जाना बताने के लिए इस प्रसंग को यहाँ उठाया था। इसका दूसरा लाभ यह हो गया कि पुराणवाचक सूतको लोग इस दृष्टि से भी देखते हैं, इसका ज्ञान हो जाता है जो बात इस प्रकार के चिन्तन के विषय में हमारा ध्यान आकृष्ट करती है तथा समाधान के लिए प्रेरित करती है।

पुराण के साङ्गोपाङ्ग विवेचन में प्रवृत्त ओझाजी यहाँ वेदशाखा विस्तार प्रसङ्ग को भी विचारार्थ रखते हैं। इसके द्वारा भी वे यह बताना चाहते हैं कि ऋगादि चार वेदों में तथा पुराण वेद में तनिक भी अन्तर नहीं है। समाज में वेद का उत्तरोत्तर प्रसार करने के उद्देश्य से शिष्यों को तैयार करने के लिए वे ५ शिष्य चुनते हैं ऋक्, यजुः, साम, अथर्व और पुराण नाम के ५ वेदों के लिये। पाँचों शिष्य पाँचों वेद पढ़ते हैं समान रूप से किन्तु प्रसार वे उसी वेद का करते हैं जिसके लिए गुरु द्वारा अधिकृत किये गये हैं। सभी पुराणों में जहाँ-जहाँ भी वेद शाखा भेद बताये गये हैं वहाँ इसी प्रकार का वर्णन है। यहाँ विष्णु पुराण के उद्धरण से यह बात बताने का यत्न है—

ब्रह्मणा चोदितो व्यासो वेदान् व्यस्तुं प्रचक्रमे।
अथशिष्यान् प्रजग्राह चतुरो वेदपारगान्।।३.४.७
ऋग्वेदपाठकं पैलं जग्राह स महामुनिः।
वैशम्पायननामानं यजुर्वेदस्य चाग्रहीत्।।८
जैमिनिं सामवेदस्य तथैवाथर्ववेदवित्।

सुमन्तु स्तस्य शिष्योऽभूद् वेदव्यासस्य धीमतः ।।९
रोमहर्षणनामानं महाबुद्धिं महामुनिः ।
सूतं जग्राह शिष्यं स इतिहासपुराणयोः ।।१०

भगवान् ब्रह्मा की प्रेरणा से वेदविभाग के उपक्रम में लगे व्यास ने चारों वेदों के चार शिष्य तथा इतिहास पुराण के एक शिष्य को लिया जो क्रमशः १. पैल २. वैशम्पायन ३. जैमिनि ४. सुमन्तु तथा ५. लोमहर्षण हैं।

शाखा भेद प्रसङ्ग की समाप्ति पर भी विष्णुपुराण का कथन है—

इति शाखाः समाख्याताः शाखाभेदा स्तथैव च।
कर्तारश्चैव शाखानां भेदहेतु स्तथोदितः ।।३.६.३१
एतत्ते कथितं सर्वं यत् पृष्टोऽहमिह त्वया।
मैत्रेय वेदसम्बद्धः किमन्यत् कथयामि ते ।।३३

मैंने यह विषय—शाखाएँ, शाखा भेद, शाखाओं के कर्त्ता तथा भेद हेतु—बता दिया है।।३१।। तुमने वेद के सम्बन्ध में जो कुछ पूछा है वह सब मैंने बता दिया है, अब बताओ क्या पूछते हो वह कहूँ।।३३।। यह स्पष्ट है कि यह 'वेदविषय' ही पूछा और कहा गया था।

इससे दूसरा विषय भी स्पष्ट हो जाता है कि जैसी उत्तरोत्तर शिष्य संख्या रही तदनुसार ही शाखा भेद बनें। यही पुराण के साथ भी है। व्यास के लोमहर्षण, लोमहर्षण के तीन शिष्य शाखाकार, इन चारों का शिष्य उग्रश्रवा, इस उग्रश्रवा द्वारा पुराण तथा अन्य ऋषियों द्वारा उपपुराण के अनेक भेद बने।

विष्णुपुराण के तथा भागवत के सुप्रसिद्ध टीकाकार श्री श्रीधर स्वामी की टीका भी पुराणावतरण के सम्बन्ध में त्रुटिपूर्ण है। ओझाजी ने उन त्रुटियों का भी सङ्केत किया है। इस प्रकार प्रारम्भ से अन्त तक पुराणावतरण का शास्त्रीय पक्ष ओझाजी ने इस सुन्दरता से प्रकट किया है कि इसका सही ढंग से स्वाध्याय करने से इस दिशा में गति बहुत अच्छे प्रकार से हो जाती है तथा पूरा पुराणवाङ्मय स्पष्ट हो जाता है।

'पुराणनिर्माणाधिकरणम्' नामक इस ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद में पूज्य गुरुवर्य्य प्रोफेसर (डॉ.) गणेशीलाल सुथार, पूर्व निदेशक, पण्डित मधुसूदन ओझा शोधप्रकोष्ठ, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, से सहायता प्राप्त हुई है, एतदर्थ उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। पुराणशास्त्रविन्मूर्धन्य पण्डित अनन्त शर्मा ने हिन्दी अनुवाद सहित इस ग्रन्थ का सम्पादन सम्पन्न किया है, अतः उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ। पण्डित मधुसूदन ओझा शोधप्रकोष्ठ की निदेशक प्रोफेसर (डॉ.) प्रभावती चौधरी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे इस अनुवाद-कार्य के लिये निरन्तर प्रेरित करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये प्राथमिकता प्रदान की है।

प्रोफेसर सत्यप्रकाश दुबे, संस्कृतविभागाध्यक्ष तथा प्रोफेसर (डॉ.) सरोज कौशल के प्रति हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर मुझे प्रोत्साहित कि[illegible]ा। मेरे अभिन्न मित्रवर्य डॉ. प्रवीण पण्ड्या (सांचौर) तथा डॉ. हरिसिंह राजपुरोहित ने सत्परामर्श प्रदान कर सन्मित्र के कर्त्तव्य का निर्वाह किया अतः उनके प्रति हृदय से कृतज्ञता का ज्ञापन मेरा परम कर्त्तव्य है।

डॉ. छैलसिंह राठौड़
संस्कृतविभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

०९-१०-२०१३

विषयानुक्रमः

पुराणनिर्माणाधिकरणम्

***

॥ श्रीः ॥

अथ पुराणसमीक्षायां पुराणसाहित्याधिकारः ।

पुराणनिर्माणाधिकरणम्

अथैतत्कतिपयमन्त्रब्राह्मणग्रन्थाविर्भावकालादपि पूर्वं तत्समकालमेव वा आसीदेको ब्रह्माण्डपुराणाख्यो वेदविशेषः सृष्टि-प्रतिसृष्टि-निरूपणात्मा ''इदं वा अग्रेनैव किञ्चिदासी-दित्यादिनोपक्रान्त इति विज्ञायते। तत्परतयैव च ''ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीति'' शतपथ-ब्राह्मणादिवचनान्तर्गतं पुराणपदमुपनीयते। तस्य च पुरावृतपरम्पराख्यानात्मकतया ब्रह्माण्ड-सृष्टिविचारात्मकतया च ब्रह्माण्डपुराणसंज्ञा। तदुक्तं मात्स्ये॥

पुराणसमीक्षा के अन्तर्गत पुराणसाहित्य सम्बन्धी अधिकार पुराणनिर्माण सम्बन्धी प्रस्ताव (भूमिका)

कुछ मन्त्रों और ब्राह्मणों के ग्रथन के आविर्भाव काल से भी पहले अथवा समकाल में ही सृष्टि और प्रतिसृष्टि का निरूपण करने वाला ''निश्चित ही यह पहले कुछ नहीं था'' इत्यादि से प्रारब्ध यह एक ब्रह्माण्ड पुराण नामक वेद विशेष था ऐसा विज्ञात होता है। ''ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र अनुव्याख्यान और व्याख्यान'' शतपथब्राह्मण के इस वचन के अन्तर्गत पुराण शब्द तत्परक ही अर्थात् ब्रह्माण्ड पुराण-परक ही ज्ञात होता है। और उसके पुरावृत परम्परा के आख्यानात्मक होने से और ब्रह्माण्ड सृष्टि विचारात्मक होने से उसका ब्रह्माण्ड पुराण नाम है। जैसा कि मत्स्य पुराण में कहा गया है—

मत्स्य उवाच— **पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।**
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥१॥
पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनघ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥२॥
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप।
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते॥३॥

तथा च पाद्मे—"पुरापरंपरां वक्ति पुराणं तेन वै स्मृतमिति"। उक्तं च बृहन्नारदीयेऽपि—

ब्रह्माण्डं च चतुर्लक्षं पुराणत्वेन पठ्यते,
तदेव व्यस्य गदितमत्राष्टादशधा पृथक्॥१॥
पाराशर्य्येण मुनिना सर्वेषामपि मानद,
वस्तु दृष्ट्वाथतेनैव मुनीनां भावितात्मनाम्॥२॥
मत्तः श्रुत्वा पुराणनि लोकेभ्यः प्रचकाशिरे"

इति तदेतत्ब्रह्मवाक्येन पूर्व—प्रसिद्धपुराणग्रन्थावलम्बेनैव पश्चादष्टादशपुराणाना-

---

मत्स्य ने कहा—ब्रह्मा द्वारा सब शास्त्रों में सबसे पहले पुराण कहा गया है उसके पश्चात् उसके मुखों से वेद विनिर्गत हुए॥१॥

केवल एक ही पुराण था उस समय कल्पान्तर में धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्ग का साधन पवित्र सौ करोड़ विस्तार वाला था॥२॥

हे नृप! समय बीतने पर पुराण का अध्ययन में अग्रहण जानकर, इस कारण से इसे अठारह प्रकरण का रूप देकर इस भूलोक में प्रकाशित किया गया॥३॥

इसी भाँति पद्म पुराण में भी कहा गया है—"प्राचीन परम्परा को कहता है इसलिए पुराण माना जाता है।" बृहद् नारदीय में भी कहा गया है—"चार लाख श्लोकों वाला ब्रह्माण्डपुराण पुराण के रूप में माना जाता है। उसी को व्यास पद्धति से यहाँ अठारह प्रकार से अलग कहा गया है। जो पवित्र अन्तकरण वाले मुनियों में से पराशर मुनि के आत्मज उन व्यास के द्वारा यथार्थ वस्तु देखकर, मुझसे (ब्रह्मा) पुराणों का श्रवण करके लोकों के लिए प्रकाशित किया गया।" ब्रह्मा के इस वाक्य से पूर्व प्रसिद्ध पुराण ग्रन्थ के

मुत्पत्तिः प्राप्यते। तत्रापि तावद् तस्मादेवादिमाद्ब्रह्माण्डपुराणग्रन्थान्मन्त्रार्थोपयुक्तानि तत्तदाधिभौतिकाधिदैविकाध्यात्मिकोपाख्यानसहितानि पुराणजातानि सम्यगवधाय महर्षिभिस्तत्तद्ब्राह्मणग्रन्थेषु तत्र तत्र यथोपयोगं तानि तान्याख्यानान्याख्यायन्ते स्म। तदभिप्रायेणैव च—

> **सोमो वै राजाऽमुष्मिन् लोके आसीत्तं देवाश्च ऋषयश्चाभ्यध्यायन्-कथमयमस्मात् सोमोराजा गच्छेदिति, तेऽब्रुवन् छन्दांसि यूयं न इमं सोमं राजानमाहरतेति, तथेति, ते सुपर्णा भूत्वोदपतन् तेयत्सुपर्णा भूत्वोदपतन् तदेतत् सौपर्णमिति आख्यानविद आचक्षते।** (ऐत. ब्रा. १३.१)

इत्येवमैतरेयकब्राह्मणादौ सिद्धानामेवाख्यानानामेव वक्तारः प्रतिपाद्यन्ते। तत्र ब्राह्मणेषु यद्यपि महर्षिभिरेवाख्यातान्याख्यानानि, अथापि नैतानि ब्राह्मणग्रन्थकर्तृ-महर्षिकल्पीनि विज्ञायन्ते। मन्त्रस्मारितप्रयोगसमवेतार्थोपपादनोपयुक्त्या तदुपादानात्तेषां मन्त्ररचनोत्तरका-

---

अवलम्बन से ही बाद में अठारह पुराणों की उत्पत्ति की जानकारी प्राप्त होती है। उनमें भी उसी आदिम (प्रथम) ब्रह्माण्ड पुराण ग्रन्थ से मन्त्रार्थ के लिए उपयुक्त तत् तत् आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उपाख्यानों से युक्त पुराण समूह का सम्यक् अवधान कर महर्षियों के द्वारा तत् तत् ब्राह्मण ग्रन्थों में तत् तत् स्थलों में उपयोग के अनुसार आख्यान कहे गये थे। उसी अभिप्राय से—

सोम राजा द्युलोक में थे। तब देवों और ऋषियों ने विचार किया कि यह सोम राजा हमारे पास कैसे आवे? उन्होंने छन्दों से कहा—'हे छन्दों, आप हमारे लिए इस सोम राजा को लावें।' उन्होंने कहा—'ठीक है'। वे पक्षी होकर (द्युलोक के प्रति) उड़े। वे जो पक्षी होकर उड़े इसलिए आख्यानवेत्ता इसे 'सौपर्णाख्यान' के नाम से पुकारते हैं।

(१३.१ प्रथम खण्ड, ३५४, ऐतरेय ब्राह्मण)

इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण आदि में सिद्ध आख्यानों को ही वक्ताओं का प्रतिपादित किया जाता है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में यद्यपि महर्षियों के द्वारा आख्यान कहे गये हैं तथापि ये ब्राह्मण ग्रन्थों के कर्ता महर्षियों के द्वारा कल्पित नहीं किए गए हैं ऐसा सुस्पष्ट ज्ञात होता है। मन्त्रों के द्वारा स्मारित प्रयोग से सम्बद्ध अर्थों के उपपादन की युक्ति से उनका उपादान

लिककल्पनाविषयत्वासंभवात् तस्मात् चिरन्तनाद् ब्रह्माण्डपुराणाद् ब्रह्मणा प्रस्तुतादेवैतानि संकलितानीत्यभिमानेन ब्राह्मणोल्लिखितानामपि पुराणार्थानां ब्रह्मकृतत्वमभिप्रेत्य—

सूतेनानुक्रमेणेदं पुराणं संप्रकाशितम्।
ब्राह्मणेषु पुरायच्च ब्रह्मणोक्तं सविस्तरम्।। २/५०

इत्युक्तं पाद्मे सृष्टिखण्डे पुराणावतारे। अन्ये तु ब्राह्मणग्रन्थकर्तुस्तस्य तस्यमहर्षेः सार्वविद्यऋत्वित्क्वाभिमानेन ब्राह्मणोल्लिखितार्थानां ब्रह्मप्रोक्तत्वमाख्यायते इत्याचक्षते।

अथैतेषु ब्राह्मणग्रन्थेषु सूत्रपातात्मना प्रायेण सर्वासामेव विद्यानामुल्लेखसत्त्वेपि वैशद्येन सजातीयसमुच्चयक्रमबन्धेन पार्थक्येन चानुल्लेखात् स्पष्टमप्रतीतेः शिक्षाक्लेशमनुलक्ष्य विधेयानुग्रहार्थंपश्चात् काले काले विशिष्टबुद्धयो महर्षयस्तेभ्यो ब्राह्मणग्रन्थेभ्यो यथाप्रतिभासमुत्कर्षं तां तां विद्यां पृथक्कृत्य युक्तिप्रयुक्तिसंसाधनसमुपवृंहितरूपेण विशदीकृत्य प्रवर्तयामासुः तत्र यथा कपिलपतञ्जल्यादयः सांख्ययोगप्रवचनम् वात्स्यायनादयः कामसूत्रम्

होने के कारण उनकी मन्त्र रचना के उत्तरकाल में कल्पना सम्भव न होने से ब्रह्मा के उस चिरन्तन ब्रह्माण्ड पुराण के द्वारा प्रस्तुत ही ये संकलित किए गए हैं। इस अभिप्राय से ब्राह्मणों में उल्लिखित भी पुराण विषयों को ब्रह्म कर्तृत्व मानकर—

सूत के द्वारा यह पुराण अनुक्रम से सम्प्रकाशित किया गया है जो प्राचीनकाल में ब्रह्मा के द्वारा विस्तारपूर्वक ब्राह्मणों में कहा गया है।

ऐसा पद्म पुराण के सृष्टि खण्ड में पुराणावतरण के विषय में कहा गया है। अन्य विद्वान् तो ब्राह्मण ग्रन्थों के कर्ता उस उस महर्षि की जो चारों वेदों का ज्ञाता ऋत्विक होने से ब्रह्मा माना जाता है कृति मानते हैं इस प्रकार के प्रसिद्ध व्यवहार से ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लिखित विषयों को 'ब्रह्मा द्वारा किया हुआ ही' मानते हैं।

इन ब्राह्मण ग्रन्थों में सूत्रपात रूप से प्रायः सभी विद्याओं का उल्लेख होने पर भी विशद रूप से सजातीय विद्याओं की अपेक्षित समुच्चय क्रम बन्ध से और पृथक् रूप से उल्लेख न होने के कारण स्पष्ट प्रतीति न होने से विधेयों के शिक्षा क्लेश को लक्षित कर उन विधेयों के अनुग्रहार्थ समय-समय पर विशिष्ट बुद्धि वाले महर्षियों ने उन ब्राह्मण ग्रन्थों से प्रतिभा के उत्कर्ष के अनुसार तत् तत् विद्या को अलग कर युक्ति प्रयुक्ति के उत्तम साधन रूप उपबृंहण से विशद व्याख्या के साथ प्रवृत्त किया है, जैसे कपिल, पतञ्जलि आदि ने सांख्य और योग का, वात्स्यायन आदि ने कामसूत्र का, मनु आदि ने

मन्वादयो धर्म्मसूत्रम् धन्वन्तरिचरकादय आयुर्वेदं शाकपूणि यास्कादयो निरुक्तम् इन्द्रपाणिन्यादयो व्याकरणं प्रवर्तयाञ्चक्रिरे तथैव वसिष्ठप्रपौत्रः, शक्तिपौत्रः पराशरपुत्रः सत्यवतीगर्भजातो भगवान् कृष्णद्वैपायनो लोकोपकारार्थं सर्वेभ्यो ब्राह्मणग्रन्थेभ्यः सर्वाण्युपाख्यानानि संकलय्यचिरप्रतीता ब्राह्मणाद्युल्लिखिताश्च तास्ता गाथाः सङ्गृह्य कथाप्रसङ्गसङ्गता कल्पशुद्धीश्च यथायथमनुबन्ध्य सर्वाण्येतानि लौकिकाख्यानविमिश्रितानि सङ्गतिबद्धानि कृत्वा पूर्व-निर्दिष्टवेदरूपब्रह्माण्डपुराणोक्तपदार्थं जगत्सर्गप्रतिसर्गात्मकं तदेतदाख्यानोपाख्यानगाथाकल्पशुद्ध्यात्मकविषयचतुष्टयेनोपगुम्फ्याष्टादशधा परिच्छिद्य रूपान्तरसंस्कृतामेकां पुराणसंहितां चक्रे। तत्र पुराणपदव्यपदिष्टानां विश्वसृष्टिविद्यानां ब्राह्मणाद्युल्लिखितानां संग्रहेणैकत्र समुच्चयकरणात् पुराणसंहितापदव्यपदेशः। तां च पुनः स्वशिष्याय सूतजाताय लोमहर्षणाय पाठयामास स चायं लोमहर्षणोऽपि तदधिगतसर्वोपाख्यानः सर्ग—प्रतिसर्ग-वंश-वंश्यचरित-मन्वन्तरात्मकविषयपञ्चकेन परिच्छिद्यापरामेकां संहितां लौमहर्षणीं नाम प्रस्तावितवान् तां च पुनः षड्भ्यः स्वशिष्येभ्यो ददौ ते यथा सुमतिः १ अग्निवर्चाः-२ मित्रयुः-३ सुशर्मा-४

धर्मसूत्र का, धन्वन्तरि चरक आदि ने आयुर्वेद का, शाकपूणि और यास्क ने निरुक्त का, इन्द्र और पाणिनि आदि ने व्याकरण का प्रवर्तन किया उसी प्रकार वसिष्ठ के प्रपौत्र, शक्ति के पौत्र पराशर के पुत्र सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न भगवान् कृष्ण द्वैपायन ने लोकों के उपकार के लिए समस्त ब्राह्मण ग्रन्थों से समस्त उपाख्यानों का संकलन करके चिरकाल से लोक ज्ञान का विषय बनी हुई, ब्राह्मण आदि में उल्लिखित उन उन गाथाओं का संग्रह करके कथा प्रसङ्ग से सङ्गत रूप से तथा कल्प शुद्धियों का यथार्थ रूप से निबन्धन कर इन समस्त लौकिक आख्यानों को मिलाकर सङ्गतिबद्ध कर पूर्व निर्दिष्ट वेद रूप ब्रह्माण्ड पुराण में उक्त जगत् के सृष्टि प्रतिसृष्टि विषय को आख्यान उपाख्यान गाथा और कल्प शुद्धि रूप इन चार विषयों में उपगुंफित कर, अठारह प्रकार से विभक्त कर, नये रूप में संस्कृत एक पुराण संहिता का निर्माण किया। ब्राह्मण आदि में उल्लेखित पुराण पद से कथित विश्व सृष्टि विद्याओं के संग्रह से उन्हें एक स्थान पर समुच्चित करने के कारण इसे 'पुराण संहिता' नाम दिया गया। फिर उस पुराण संहिता को अपने शिष्य सूत पुत्र लोमहर्षण को पढ़ाया। उस लोमहर्षण ने भी समस्त उपाख्यानों का ज्ञान प्राप्त कर सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, वंश्यचरित्र और मन्वन्तर नाम के इस विषयपंचक के द्वारा पूर्ण एक अन्य लौमहर्षिणी नामक संहिता को तैयार किया। और उसको अपने छः शिष्यों को प्रदान किया उनके नाम इस प्रकार है—१. सुमति २. अग्निवर्चा ३. मित्रयु ४. सुशर्मा

अकृतव्रणः-५ सोमदत्तिः-६। एत एव गोत्रनाम्नांक्रमेण १-आत्रेयः २-भारद्वाजः ३-वसिष्ठः ४-शांशपायनः ५-काश्यपः ६-सावर्णिः इत्याख्यायन्ते। त एते षडपि पुनस्तस्या लौमहर्षण्या मूलसंहिताया आदि संहितायाश्च बादरायण्या आधारेण स्वस्वेच्छाक्रमनिबद्धाः षट् संहिता रचयामासुः। तासु च जिज्ञासाख्यानसंवादप्रवृत्त्यनुरोधिप्रसङ्गसम्पतितसंक्षिप्तविस्तरानेक विभिन्नकथानकोपेतत्वाद्विभिन्नाकारास्वपि सर्गप्रतिसर्गादयः सामान्या धर्म्मा सर्वासु तदितरैस्तु तैस्तैर्विषयैः साधर्म्यं च वैधर्म्यं चान्यासामन्यासाम् तदित्थं साकल्येनाष्टौ संहिता जाताः इति केचित्। वायुपुराणविष्णुपुराणयोस्तु चतस्र एव संहिता उच्यन्ते १-लौमहर्षणिका २-काश्यपिका ३-सावर्णिका ४-शांशपायनिका चेति। एतत्संहिताचतुष्टयाधारेणैव ब्रह्मपुराणादीन्यऽष्टादशपुराणप्रकरणानि वेदव्यासकल्पितानीदानीं प्रसिद्धाष्टादशनिबन्धरूपैरुग्रश्रवः-प्रभृतिसूतसमुपबृंहितानि समपद्यन्त।

तथा च विष्णुपुराणम्—

---

५. अकृतव्रण और ६. सौमदत्ति। ये ही छः गोत्र के नाम से क्रमशः १. आत्रेय, २. भारद्वाज, ३. वसिष्ठ, ४. शांशपायन, ५. काश्यप और ६. सावर्णि कहे जाते हैं। (उन छः ने ही पुनः मूल संहिता लौमहर्षिणी और आदि संहिता बादरायणी के आधार से स्व स्व इच्छा के क्रम से निबद्ध छः संहिताओं की रचना की और उनमें जिज्ञासा और आख्यान रूप संवाद की प्रवृत्ति के अनुसार ही प्रसङ्गतः प्राप्त संक्षिप्त और विस्तृत अनेक विभिन्न कथानकों से युक्त होने के कारण विभिन्न आकार वाली होने पर भी सर्ग, प्रतिसर्ग आदि सामान्य धर्म सब में थे, उनसे इतर उन उन विषयों से साधर्म्य और अन्य में वैधर्म्य, इस प्रकार एक रूप तथा पृथक् स्वरूप वाली सम्पूर्ण रूप से आठ संहिताएँ हो गयी ऐसा कुछ लोग मानते हैं। वायुपुराण और विष्णुपुराण में चार ही संहिताएँ कहीं जाती हैं—१. लौमहर्षणिका, २. काश्यपिका, ३. सावर्णिका और ४. शांशपायनिका। इन चार संहिताओं के समूह के आधार से ही ब्रह्मपुराण आदि अष्टादश पुराण प्रकरण जो वेदव्यास द्वारा कल्पित तथा इस समय निबन्ध रूप से प्रसिद्ध हैं उग्रश्रवा आदि सूतों के द्वारा अठारह पुराण रूप में परिवर्धित हुए, जैसा कि विष्णु पुराण में कहा गया है—

पराशर उवाच।

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः ।।१।। ३/६/१५

प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत् सूतो वै रोमहर्षणः।
पुराणसंहितां तस्मै ददौ व्यासो महामुनिः ।।२।। ३/६/१६

—महामतिः मुद्रित वि.पु. पाठ

[१] सुमतिश्चा[२]ग्निवर्चाश्च [३] मित्रायुः [४] शांशपायनः।
अकृत[५]व्रण[६]सावर्णिः षट् शिष्यास्तस्य चाभवन् ।।३।। ३/६/१७

[५] काश्यपः संहिताकर्त्ता [६] सावर्णिः [४] शांशपायनः।
रोमहर्षणिका चान्या तिसृणां मूलसंहिता ।।४।। ३/६/१८

चतुष्टयेन भेदेन संहितानामिदं मुने।
आद्यं सर्व पुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते ।।५।। ३/६/१९

पराशर बोले—

पुराणार्थ विशारद व्यास जी ने आख्यान, उपाख्यान गाथा और कल्पशुद्धि के सहित पुराण संहिता की रचना की।।१।।

रोमहर्षण सूत व्यास जी के प्रसिद्ध शिष्य थे। महामुनि व्यासजी ने उन्हें पुराणसंहिता का अध्ययन कराया।।२।।

उस सूतजी के सुमति, अग्निवर्चा, मित्रयु, शांशपायन, अकृतव्रण और सार्वणि— ये छः शिष्य थे।।३।।

काश्यपगोत्रीय अकृतव्रण, सार्वणि और शांशपायन—ये तीन संहिताकर्ता हैं। उन तीनों संहिताओं की आधार एक लोमहर्षण की संहिता है।।४।।

हे मुने! इन चार संहिताओं से मैंने विष्णुपुराण संहिता बनायी है। पुराणज्ञ कुल अठारह पुराण बतलाते हैं, उन सब में (आदिम) ब्रह्मपुराण है।।५।।

अष्टादश पुराणानि पुराणज्ञाः प्रचक्षते।
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।।६।।

तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्।
आग्नेयमष्टमं चैवद्भविष्यं नवमं स्मृतम्।।७।।

दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम्।
वाराहं द्वादशं चैव स्कान्दं चात्र त्रयोदशम्।।८।।

चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं स्मृतम्।
मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम्।।९।।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च यत्।।१०।।

यदेतत् तव मैत्रेय पुराणं कथ्यते मया।
एतद्वैष्णवसंज्ञं वै पाद्मस्य समनन्तरम्।।११।।

प्रथम पुराण ब्रह्म है, दूसरा पद्म, तीसरा वैष्णव, चौथा शैव, पांचवाँ भागवत, छठा नारदीय और सातवाँ मार्कण्डेय है।।६।।

इसी प्रकार आठवाँ आग्नेय, नवाँ भविष्यत्, दसवाँ ब्रह्मवैवर्त और ग्यारहवाँ पुराण लैङ्ग कहा जाता है।।७।।

तथा बारहवाँ वाराह, तेरहवाँ स्कन्द, चौदहवाँ वामन, पन्द्रहवाँ कौर्म तथा इसके पश्चात् १६ वाँ मात्स्य, १७ वाँ गारुड़ और १८ वाँ ब्रह्माण्ड पुराण है हे महामुने! ये ही अठारह महापुराण हैं।।८-९।।

इन सभी में सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वन्तर और भिन्न-भिन्न वंशों के अनुचरित्रों का वर्णन किया गया है।।१०।।

हे मैत्रेय! जिस पुराण को मैं तुम्हें सुना रहा हूँ वह पद्मपुराण के अनन्तर कहा हुआ वैष्णव नामक महापुराण है।।११।।

सर्गे च प्रतिसर्गे च वंशमन्वन्तरादिषु।
कथ्यते भगवान् विष्णुरशेषेष्वेव सत्तम॥१२॥

(विष्णु पुराण ३/६/१५-२७)

वायु पुराणेऽपि—

लोमहर्षण उवाच।

षट्शः कृत्वा मयाप्युक्तं पुराणमृषिसत्तमाः।
आत्रेयः सुमतिर्धीमान् काश्यपो ह्यकृतव्रणः॥१॥ ६१/५५

भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्च वसिष्ठो मित्रयुश्चयः।
सावर्णिः सोमदत्तिस्तु सुशर्मा शांशपायनः॥२॥ ५६

एते शिष्या मम ब्रह्मन् पुराणेषु दृढव्रताः।
त्रिभिस्तत्र कृतास्तिस्रः संहिताः पुनरेव हि॥३॥ ५७

हे साधु श्रेष्ठ! इसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश और मन्वन्तरादि में सर्वत्र केवल विष्णु भगवान् का ही वर्णन किया गया है॥१२॥

(श्री विष्णुपुराण—३/६/१५-२७)

वायु पुराण में भी यही कहा गया है—

लोमहर्षण ने कहा—

हे ऋषिवर्य्यवृन्द! मैंने भी पुराण का छः प्रकार के विभागों में उपदेश किया है। अत्रि, गोत्रोत्पन्न बुद्धिमान् सुमति, काश्यपगोत्रीय अकृतव्रण॥१॥

अग्निवर्चा भारद्वाज, वशिष्ठ गोत्रोत्पन्न मित्रयु, सोमदत्तपुत्र सावर्णि और सुशर्मा शांशपायन॥२॥

हे विप्रवृन्द! ये हमारे पुराणों में शिष्य हैं, जो सब के सब दृढ़ व्रतधारी हैं। इनमें से तीन शिष्यों ने तीन संहिताओं का निर्माण किया॥३॥

काश्यपः संहिताकर्त्ता सावर्णिः शांशपायनः।
मामिका च चतुर्थी स्यात् सा चैषा पूर्वसंहिता॥४॥ ५८

सर्वास्ता हि चतुष्पादाः सर्वाश्चैकार्थवाचिकाः।
पाठान्तरे पृथग्भूता वेदशाखा यथा तथा॥५॥

चतुःसाहस्रिकाः सर्वाः शांशपायनिकामृते। ५९
लौमहर्षणिकामूलास्ततः काश्यपिकाः पराः॥६॥

सावर्णिका स्तृतीयास्ता यजुर्वाक्यार्थपण्डिताः। ६०
शांशपायनिकाश्चान्या नोदनार्थविभूषिताः॥७॥

तदित्थं वेदव्यासकृतानां होत्रुद्गात्रध्वर्य्यथर्वणिकर्मानुरोधिनीनां चतसृणां याज्ञियकर्म-सहितानां पैलजैमिनिवैशम्पायनसुमन्त्वात्मक-शिष्य-प्रशिष्य-प्रणालीभेदेन यथा कालेकालेऽनेकाःशाखाः समभूवन् तथैव वेदव्यासकृतायाः स्त्रीशूद्रद्विजबन्ध्वादि सामान्यविधेया-

---

संहिता कर्ता ये काश्यप, सावर्णि और शांशपायन के नाम से प्रसिद्ध है। चौथी संहिता मेरी है जो यह पूर्व संहिता है॥४॥

ये सभी चारों संहिताएँ चार-चार पादों वाली एवं समान विषय की वाचिका है। वेद शाखाओं की भाँति केवल पाठान्तर में भिन्न-भिन्न है॥५॥

शांशपायन की संहिता को छोड़कर इन सबकी संख्या चार-चार सहस्र पद्यों की है। इन समस्त पुराण वेद संहिताओं का मूल लोमहर्षण की संहिता ही है, उसके बाद दूसरी संहिता काश्यप की है॥६॥

सावर्णिक संहिता का तृतीय स्थान है, जो यजुर्वेद की वाक्यावलि से मण्डित हैं इसके अतिरिक्त जो शांशपायन की संहिता है वह प्रेरणात्मक अर्थ से अर्थात् विधिवाक्यों से विभूषित है॥७॥　　　(वायुपुराण, अध्याय ६१/५५-६१)

इस प्रकार वेदव्यास द्वारा कृत होता, उद्गाता अध्वर्यु तथा अथर्वणिक कर्मो के अनुरोध वाली चारों यज्ञीय कर्म संहिता के पैल, जैमिनि, वैशम्पायन तथा सुमन्तु के शिष्यों-प्रशिष्यों की परम्परा के भेद से समय-समय पर अनेक शाखाएँ हुई। उसी प्रकार वेद व्यास के द्वारा कृत स्त्री, शूद्र, द्विज, बन्धु आदि सामान्य व्यक्तियों के अनुरोध वाली

नुरोधिन्या एकस्याः पुराणसंहिताया अपि लोमहर्षणात्मकशिष्यप्रशिष्य प्रणालीभेदेन संहिता-चतुष्टयीद्वारा क्रमशः इदानीं प्रसिद्धान्यष्टादशनिबन्धजातानि विभिन्नाकाराणि प्रासिद्ध्यन्त। तथा चोक्तं कौर्मेऽपि—

पराशरसुतो व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽभवत्।
स एव सर्ववेदानां पुराणानां प्रदर्शकः ॥१॥

अथ शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेद पारगान्।
जैमिनिं च सुमन्तुं च वैशम्पायनमेव च ॥२॥

पैलं तेषां चतुर्थं च पञ्चमं मां महामुनिः।
ऋग्वेदपाठकं पैलं जग्राह स महामुनिः ॥३॥

यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च।
जैमिनिं सामवेदस्य पाठकं सोऽन्वपद्यत ॥४॥

तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम्।
इतिहासपुराणानि प्रवक्तुं मामयोजयत् ॥५॥

एक पुराण संहिता के भी लोमहर्षण आदि शिष्य-प्राशष्यों प्रणाली के भेद से चार संहिताओं के द्वारा ही इस समय प्रसिद्ध अठारह पुराण ग्रन्थ विभिन्न आकार-प्रकारों को लेकर प्रसिद्ध हुए। जैसा कि कूर्म पुराण में कहा गया है—

सूत बोले—

पराशर के पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास हुए। वही समस्त वेदों तथा पुराणों के प्रदर्शक हुए॥१॥

अनन्तर उन्होंने चार शिष्यों को वेद-पारंगत बनाने हेतु अपनाया, जो जैमिनि, सुमन्तु, वैशम्पायन और पैल हैं॥२॥

तथा महामुनि का पञ्चम शिष्य मैं हूँ। उन महामुनि ने पैल को ऋग्वेद का पाठक बनाया॥३॥

वैशम्पायन को यजुर्वेद का प्रवक्ता तथा जैमिनि को सामवेद का पाठक बनाया॥४॥

अथर्ववेद का पाठक ऋषि श्रेष्ठ सुमन्तु को बनाया और इतिहास पुराणों का प्रवचन करने के लिए मुझे नियुक्त किया॥५॥

एक आसीद् यजुर्वेदस्तं चतुर्द्धा व्यकल्पयत्।
चातुर्हौत्रमभूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमथाकरोत्॥६॥

आध्वर्य्यवं यजुर्भिः स्यादृग्भिर्हौत्रं द्विजोत्तमाः।
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः॥७॥

ततः स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् प्रभुः।
यजूँषि च यजुर्वेदं सामवेदं तु सामभिः॥८॥

एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा।
शाखानां तु शतेनैव यजुर्वेदमथाकरोत्॥९॥

सामवेदं सहस्रेण शाखानां प्रबिभेद सः।
अथर्वाणमथो वेदं बिभेद नवकेन तु॥१०॥

भेदरैष्टादशैर्व्यासः पुराणं कृतवान् प्रभुः।
सोऽयमेकश्चतुःपादो वेदः पूर्वं पुरातनात्॥११॥ इति।

यजुर्वेद एक था। उसे चार भागों में विभक्त किया। उसमें चातुर्हौत्र प्रतिष्ठित है, उससे (चातुर्हौत्र) यज्ञ किया॥६॥

हे द्विज श्रेष्ठो! यजुमन्त्रों से आध्वर्यव कर्म, साममन्त्रों से औद्गात्र कर्म, ऋचाओं से होता का कर्म तथा अथर्व मन्त्रों से ब्रह्मत्व का विधान निर्णीत किया।

तदनन्तर प्रभु ने ऋचाओं को उद्धृत कर ऋग्वेद का निर्माण किया। यजुमन्त्रों को उद्धृत करके यजुर्वेद और सामयोनि मन्त्रों द्वारा सामगान का प्रणयन किया॥८॥

प्रथम ऋग्वेद को इक्कीस भेद से। यजुर्वेद को सौ शाखाओं से सम्पन्न किया॥९॥

फिर व्यास ने सामवेद को एक हजार शाखाओं में विभक्त किया और अथर्ववेद को नौ शाखाओं में विभक्त किया॥१०॥

व्यास ने पुराण के अठारह भाग कल्पित किये। सो इस प्रकार पूर्वकाल में ब्रह्म से प्राप्त चतुष्पादात्मक (किन्तु पाद विभाग रहित) एक वेद को नाना शाखा विभाग में विभक्त किया॥११॥ (कूर्मपुराण, ५२ अध्याय/९-२१)

तेषु हि तत्संहिताचतुष्टयोपात्तानां कथानकानां पश्चादपि काले काले मुनिसमाजेषु तत्र-तत्र कथोपकथनादिना सात्त्विकराजसतामसोपासनाद्यनेकविभिन्नार्थप्राधान्यानुरोधेन च मुख्योद्देशभेदादितिहासप्रबन्धभेदः प्रावर्तत। अथायमितिहासविद्यावृत्तिकतया नियमितः सूतो लोमहर्षणः पश्चात्सम्भूतानामपि तत्तत्पुराणविद्यानुगतानां पुलस्त्यभीष्मादिपराशरमैत्रेयादि तत्तन्मुनिसंवादानां यथायथं विद्वान् पुराणप्रचारणाय कदाचिन्नैमिषारण्यं गत्वा तानि वेदव्यासेनैवादावष्टादशधापरिच्छिन्नानि संहिताष्टकमध्यात्कतिपयसंहितोल्लेखानुबन्धीनि तानि शौनकादिभ्यो जिज्ञासुभ्य आचचक्षे। तत्र यद्यपि तेषामष्टादशानां वेदव्यासव्यस्तानां पुराणानां पौर्वापर्य्यमन्यथा नियतमथापि जिज्ञासुजिज्ञासानुरोधिप्रवृत्तिकतया तत्क्रमानपेक्ष्येणैवायं लोमहर्षणस्तेभ्यो ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं कौर्मं मात्स्यं वामनं वाराहं ब्रह्मवैवर्तं नारदीयं भविष्य-मित्येतानि दश पूर्णानि श्रावयित्वा आग्नेयस्याप्यर्द्धं श्रावितवान्। अथ दैवान्नैमिषारण्यमागतो बलभद्रस्तत्रावशिष्टमाग्नेयं श्रावयन्तमेवैनं शूद्रत्वादुच्चासनायोग्यमप्युच्चासनासीनं दृष्ट्वा

उन चार संहिताओं में गृहीत कथानकों का बाद में भी समय-समय पर मुनि समाजों में वहाँ-वहाँ कथोपकथन आदि के द्वारा सात्त्विक राजस और तामस उपासना आदि अनेक विभिन्नार्थक विषयों की प्रधानता के अनुरोध से मुख्य उद्देश्य के भेद से इतिहास प्रबन्ध भेद प्रवृत्त हुआ। कालान्तर में इतिहास विद्या वृत्ति से नियमित सूत लोमहर्षण ने बाद में उत्पन्न हुए भी तत् तत् पुराण विद्याओं से अनुगत पुलस्त्य भीष्म आदि पराशर मैत्रेय आदि तत् तत् मुनि संवादों के यथार्थ रूप से ज्ञाता हो पुराणों के प्रचार के लिए कभी नैमिषारण्य जाकर वेद व्यास ने ही आदि में अठारह प्रकार से सीमित संहिताष्टकों के मध्य से कतिपय संहिताओं के उल्लेख से सम्बन्धित विषयों को शौनक आदि जिज्ञासुओं को बतलाया। वेद व्यास के द्वारा प्रसारित अठारह पुराणों का पौर्वापर्य्य यद्यपि अन्यथा नियत था तथापि जिज्ञासुओं की जिज्ञासा मानकर चलने की अनुरोध प्रवृत्ति से उनके क्रम की अपेक्षा किए बिना ही इस लोमहर्षण ने उनके लिए ब्राह्म पद्म वैष्णव कौर्म मत्स्य वामन वाराह ब्रह्मवैवर्त नारदीय भविष्य इन दस पूरे पुराणों को सुनाकर आधा आग्नेय पुराण भी सुनाना आरम्भ किया। इसी समय संयोग से नैमिषारण्य में आये हुए बलभद्र ने वहाँ शेष आग्नेय पुराण सुनाते हुए शूद्र होने के कारण उच्चासन के

क्रोधाकुलितो जघान। ततो लोमहर्षणे पञ्चत्वं गते व्यथितहृदयैस्तैः शौनकादिभिर्बलभद्र-परामर्शेन तत्पुत्रमुग्रश्रवसं नामसूतमाहूयाध्यासनं दत्वाऽवशिष्टं तत्सार्द्धं सप्तकं पुराणानामश्रूयत तदेतदुक्तम् पाद्मोत्तरखण्डे भागवतमाहात्म्ये।

शिव उवाच।

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च कौर्मं मात्स्यं च वामनम्।
वाराहं ब्रह्मवैवर्तं नारदीयं भविष्यकम्॥१॥

आग्नेयमर्द्धं वै सूताच्छुश्रुवुर्लोमहर्षणात्।
एतानि तु पुराणानि द्वापरान्ते श्रुतानि हि॥२॥

शौनकाद्यैर्मुनिवरैर्यज्ञारम्भात् पुरैव हि।
यदा तु तीर्थयात्रायां बलदेवः समागतः॥३॥

अयोग्य भी लोमहर्षण को उच्चासीन देखकर क्रोध से भरकर उसको मार दिया। उसके पश्चात् लोमहर्षण के मरने पर दुःखित हृदय वाले उन शौनक आदि ने बलभद्र के परामर्श से उसके पुत्र उग्रश्रवा नामक सूत को बुलाकर वही उच्च आसन देकर शेष साढ़े सात पुराण सुने। यह बात पद्म पुराण के उत्तरखण्ड के भागवत माहात्म्य में कही गयी है (भगवती पार्वती को भगवान् शिव कथा कह रहे हैं)—

शिव ने कहा—

१. ब्राह्म, २. पद्म, ३. वैष्णव, ४. कौर्म, ५. मात्स्य, ६. वामन, ७. वाराह, ८. ब्रह्मवैवर्त, ९. नारदीय, १०. भविष्य॥१॥

और आधे आग्नेयपुराण का सूत लोमहर्षण के मुख से श्रवण किया। इन पुराणों का द्वापर के अन्त में शौनक आदि श्रेष्ठ मुनियों ने यज्ञ आरम्भ से पहले ही श्रवण कर लिया था॥२-३॥

नैमिषं मिश्रकं नाम समाहूतो मुनीश्वरैः।
तत्र सूतं समासीनं दृष्ट्वा त्वध्यासनोपरि ॥४॥

चुक्षुभे भगवान् रामः पर्वणीव महोदधिः।
आषाढशुक्लद्वादश्यां पार्वणाहनि पार्वति ॥५॥

पूर्वार्द्धयामवेलायां भावित्वात् कृष्णमायया।
मुग्धो दर्भकरो रामः प्राहरल्लोमहर्षणम् ॥६॥

ततो मुनिगणाः सर्वे हाहाकारपरायणाः।
बभूवुर्नगजेऽत्यर्थं शोकदुःखाकुलान्तराः ॥७॥

ऊचुश्च रामं लोकेशं विनयेन क्षमापराः।
राम राम महाबाहो भवता लोककारिणा ॥८॥

अजानतेवाचरिता हिंसा ब्रह्मवधाधिका।
व्यासशिष्यो ह्ययं साक्षात्पुराणर्षिर्महातपाः ॥९॥

जब तीर्थ यात्रा में बलदेव नैमिषारण्य में श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा बुलाये गये मिश्रक में आये तब उच्च आसन पर विराजमान सूत को देखकर पौर्णमसि पर्व में महासागर की तरह भगवान् बलराम क्षुब्ध हो गये ॥४॥

हे पार्वति! आषाढ़ शुक्ल द्वादशी में पूर्व अर्द्धयाम वेला में कृष्ण माया से (भवितव्यता से) मुग्ध हाथ में दर्भ लिए हुए बलराम ने लोमहर्षण पर प्रहार कर दिया ॥५-६॥

हे नगपुत्रि, तत्पश्चात् हा हा कार करते हुए सारे मुनिगण शोक और दुःख से आकुल अन्तःकरण वाले हो गये ॥७॥

उन्होंने विनय और क्षमाशीलता के साथ लोकेश बलराम को कहा ॥८॥

हे महाबाहु! राम! हे लोक कारक अर्थात् लोकनायक राम आपने न जानते हुए की भाँति ब्रह्महत्या से भी अधिक उग्र हिंसा कर दी है। यह साक्षात् व्यास शिष्य पुराण ऋषि तथा महातपस्वी थे ॥९॥

अस्मै ह्यध्यासनं दत्तमस्माभिर्यज्ञकर्मणि।
अष्टादशपुराणानां वाचकाय कृतक्षणैः ॥१०॥

ततः प्रोवाच भगवान् रामः शत्रुनिषूदनः।
विप्राः शृणुत भद्रंवः कोपं त्यक्त्वा सुदूरतः ॥११॥

अस्य पुत्रो महाज्ञानी भविष्यति वरान्मम।
भवतामीप्सितं सर्व शास्त्रं वै कथयिष्यति॥१२॥

इति श्रुत्वा वचस्ते तु रामस्य सुमहात्मनः।
लौमहर्षणि माहूय सत्कृत्य नगनन्दिनि! ॥१३॥

तत्पदे स्थापयामासुः शेषसङ्कीर्त्तनाय वै।
आग्नेयोत्तरमाहात्म्यं श्रीमद्भागवतान्तकम्॥१४॥

पुराणसप्तकसार्द्धं शुश्रुवुर्हृष्टमानसाः ॥१५॥ इति।

लोमहर्षणजीवद्दशायामपि नैकान्ततो लोहमर्षण एव प्रत्यहं श्रावयामास। किन्तु तत्रापि मध्ये मध्ये तत्पुत्रोऽयमुग्रश्रवा लोमहर्षणाज्ञया नैमिषारण्यं गत्वा यथायथमाचचक्षे एवेत्यस्मा-

---

अठारह पुराणों के वाचक इनको हमारे द्वारा इस यज्ञकर्म में समय निकाल कर कथा हेतु यह आसन दिया गया था॥१०॥

तब शत्रुओं का वध करने वाले भगवान् बलराम ने कहा—हे ब्राह्मणो! सुनो आप अपने क्रोध को पूरी तरह त्याग दीजिए। आपका कल्याण हो॥११॥

इस लोमहर्षण का पुत्र मेरे वरदान से महाज्ञानी होगा तथा आपके वाञ्छित सारे शास्त्रों का कथन करेगा॥१२॥

महात्मा बलराम के इस वचन को सुनकर हे पार्वति! उन्होंने लोमहर्षण के पुत्र को बुलाकर सत्कारपूर्वक शेष कथा कहने के लिए उस अध्यासन पर स्थापित किया॥१३-१४॥

तथा प्रसन्न हो आग्नेय के उत्तर भाग के माहात्म्य से लेकर श्रीमद्भागवत के अन्त तक साढ़े सात पुराणों का श्रवण किया॥१५॥

लोमहर्षण (की जीवित अवस्था ने अपने जीवनकाल) में एकमात्र स्वयं ही सदैव पुराणों का श्रवण नहीं कराया किन्तु उस समय भी बीच-बीच में उसके पुत्र इस उग्रश्रवा

देवपद्मपुराणाद् विज्ञायते। स्मर्य्यते हि तत्रोग्रश्रवःप्रोक्ते पाद्मे सृष्टिखण्डे पुराणोपक्रमप्रकरणे लोमहर्षणाज्ञया उग्रश्रवसः पाद्मपुराणकथनम् तथाहि—

सूतमेकान्तमासीनं व्यासशिष्यो महामतिः।
लोमहर्षणनामा वा उग्रश्रवसमाह तत्॥१॥

ऋषीणामाश्रमाँस्तात गत्वा धर्मान् समासतः।
पृच्छतां विस्तराद् ब्रूहि यन्मत्तः श्रुतवानसि॥२॥

वेदव्यासान्मया पुत्र! पुराणान्यखिलानि च।
तवाख्यातानि प्राप्तानि मुनिभ्यो वद विस्तरात्॥३॥

ईजिरे दीर्घसत्रेण ऋषयो नैमिषे तदा।
तत्र गत्वा तु तान् ब्रूहि पृच्छतो धर्मसंशयान्॥४॥

उग्रश्रवास्ततो गत्वा ज्ञानविन्मुनिपुङ्गवान्।
अभिगम्योपसंगृह्य नमस्कृत्वा कृताञ्जलिः॥५॥

ने लोमहर्षण की आज्ञा से नैमिषारण्य जाकर पिता की भाँति पुराणों का श्रवण करवाया था यह बात भी इसी पद्म पुराण से ही ज्ञात होती है। उग्रश्रवा के द्वारा कथित पद्म पुराण के सृष्टि खण्ड के 'पुराण उपक्रम प्रकरण' में इस विषय को कहा गया है कि लोमहर्षण की आज्ञा से उग्रश्रवा द्वारा पद्मपुराण का कथन किया गया—

एकान्त में बैठे हुए सूत उग्रश्रवा को महामति व्यास शिष्य लोमहर्षण ने कहा॥१॥

हे प्रिय पुत्र! ऋषियों के आश्रम में जाकर धर्मों के बारे में संक्षेप से पूछते हुए भी उनको विस्तार से वह सब कुछ सुनाओ जो तुमने मुझसे सुना है॥२॥

हे पुत्र! वेद व्यास से प्राप्त समस्त पुराणों को मैंने तुम्हें पढ़ाया है, विस्तार से उन्हें मुनियों को सुनाओ॥३॥

ऋषियों ने नैमिषारण्य में 'दीर्घ सत्र' यज्ञ किया। वहाँ जाकर धर्म के विषय में अपने संशय पूछते हुए उन मुनियों के संशय दूर करते हुए पुराण कथा कहो॥४॥

ज्ञानविद् और मेधावी उग्रश्रवा ने श्रेष्ठ मुनियों के पास जाकर पैर छूकर उनको करबद्ध नमस्कार प्रणति से प्रसन्न किया॥५॥

तोषयामास मेधावी प्रणिपातेन तानृषीन्।
चे चापि सत्रिणः प्रीताः ससदस्या महात्मने॥६॥

ऋषय ऊचुः।

कुतस्त्वमागतः सूत! कस्माद्देशादिहागतः।
कारणं चागमे ब्रूहि वृन्दारकसमद्युते!॥७॥

(उग्रश्रवाः) सूत उवाच।

पित्राहं तु समादिष्टो व्यासशिष्येण धीमता।
शुश्रूषस्व मुनीन् गत्वा यत्ते पृच्छन्ति तद्वद॥८॥
वदन्तु भगवन्तो मां कथयामि कथां तु याम्।
पुराणं चेतिहासं वा धर्मानथ पृथग्विधान्॥९॥

यज्ञ दीक्षित वे ऋषि भी यज्ञ सदस्यों के सहित उस महात्मा सूत पर प्रसन्न हो गए॥६॥

ऋषियों ने कहा—

हे देवताओं के समान तेजस्वी सूत! आप कैसे (किस निमित्त से) और किस देश से यहाँ आये हैं? अपने आने का कारण बतलाइये॥७॥

सूत ने कहा—

महर्षियों! मेरे बुद्धिमान् पिता व्यास शिष्य लोमहर्षण ने मुझे यह आज्ञा दी है कि 'तुम मुनियों के पास जाकर उनकी सेवा शुश्रूषा में रहो और वे जो कुछ पूछें, उन्हें बताओ॥८॥

पूजनीय ऋषियों मुझे बताइये, मैं कौन सी कथा कहूँ? पुराण कहूँ अथवा इतिहास अथवा भिन्न-भिन्न धर्म॥९॥

अथ तेषां पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत।
दृष्ट्वा तमतिविश्वस्तं विद्वांसं लौमहर्षणिम् ।।१०।।

तस्मिन् सत्रे कुलपतिः सर्वशास्त्रविशारदः।
शौनको नाम मेधावी विज्ञानारण्यके गुरुः ।।११।।

इत्थं तद्भावमालम्ब्य धर्माञ्छुश्रूषुराह तम्।
पित्रा सूत महाबुद्धे भगवान् ब्रह्मवित्तमः ।।१२।।

इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः।
दुदोहिथ मतिं तस्य त्वं पुराणाश्रयां शुभाम् ।।१३।।

अमीषां विप्रमुख्यानां पुराणं प्रति संप्रति।
शुश्रूषास्ते महाबुद्धे तच्छ्रावयितुमर्हसि ।।१४।।

सर्वे हीमे महात्मानो नानागोत्राः समागताः।
स्वान् स्वानंशान् पुराणोक्ताच्छृण्वन्तु ब्रह्मवादिनः ।।१५।।

अब निःसन्दिग्ध ज्ञान वाले, आत्मविश्वासी, लोमहर्षण पुत्र विद्वान् उग्रश्रवा को देखकर उनके हृदय में पुराण सुनने की इच्छा जाग्रत् हुई। उस यज्ञ में यजमान थे कुलपति महर्षि शौनक, जो सम्पूर्ण शास्त्रों के विशेषज्ञ, मेधावी तथा (वेद के) विज्ञानमय आरण्यक भाग के आचार्य थे वे सब महर्षियों के साथ, सूत के पूर्ण आश्वस्त भाव का आश्रय लेकर धर्म सुनने की इच्छा से बोले।।१०-११।।

महाबुद्धिमान् सूत! आपेक पिता ने इतिहास और पुराणों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ भगवान् व्यास की भलीभाँति आराधना की है और उनकी पुराण-विषयक श्रेष्ठ बुद्धि से आपने अच्छी तरह उनका लाभ उठाया है।।१२-१३।।

हे महामते! यहाँ जो श्रेष्ठ ब्राह्मण विराजमान हैं,ये इस समय पुराण सुनना चाहते हैं अतः आप इन्हें पुराण सुनाने की कृपा करें।।१४।।

ये सभी श्रोता, जो यहाँ एकत्रित हुए हैं, बहुत ही श्रेष्ठ हैं। भिन्न-भिन्न गोत्रों में इनका जन्म हुआ है। ये वेदवादी ब्राह्मण अपने-अपने वंश का पौराणिक वर्णन सुनें।।१५।।

संपूर्णे दीर्घसत्रेऽस्मिंस्तांस्त्वं श्रावय वै मुनीन्।
पाद्मं पुराणं सर्वेषां कथयस्व महामते ॥१६॥

कथं पद्मं समुद्भूतं ब्रह्मा तत्र कथंन्वभूत्।
प्रोद्भूतेन कथं सृष्टिः कृता, तां तु तथा वद ॥१७॥

एवं पृष्टस्ततस्ताँस्तु प्रत्युवाच शुभां गिरम्।
सूक्ष्मं च न्यायसंयुक्तं प्राब्रवीद्रौमहर्षणिः ॥१८॥

धर्म एष तु सूतस्य सद्भिर्दृष्टः सनातनः।
देवतानामृषीणां च राज्ञां चामिततेजसाम् ॥१९॥

वंशानां धारणं कार्य्यं स्तुतीनां च महात्मनाम्।
न हि वेदेष्वधीकारः कश्चित् सूतस्य दृश्यते ॥२०॥

येऽत्र क्षत्रात् समभवन् ब्राह्मण्याश्चैव योनितः।
पूर्वेणैव तु साधर्म्याद्वैधर्मास्ते प्रकीर्तिताः ॥२१॥

इस दीर्घकालीन यज्ञ के पूर्ण होने तक आप मुनियों को पुराण सुनाइये। महाप्राज्ञ! आप इन सब लोगों को पद्मपुराण की कथा कहिये ॥१६॥

पद्म की उत्पत्ति कैसे हुई उससे ब्रह्माजी का आविर्भाव किस प्रकार हुआ तथा कमल से प्रकट हुए ब्रह्मा ने किस तरह जगत् की सृष्टि की—ये सब बातें बताइये ॥१७॥

उनके इस प्रकार पूछने पर लोमहर्षण-कुमार सूत ने सुन्दर वाणी में सूक्ष्म अर्थ से भरा हुआ न्याययुक्त वचन कहा– ॥१८॥

(पुरातन) विद्वानों की दृष्टि में सूत का सनातन स्वधर्म यही है कि वह देवताओं, ऋषियों तथा अमित तेजस्वी राजाओं की पठित वंश परम्परा को धारण करे—उसे याद रखे, इतिहास और पुराणों में जिन ब्रह्मवादी महात्माओं का वर्णन किया गया है ॥१९॥

सूत का वेदों पर कार्य का कोई अधिकार नहीं है अर्थात् वेद पढ़कर उसका लोक में व्याख्या पूर्वक प्रचार-प्रसार का दायित्व सूत का नहीं है ॥२०॥

जो ब्राह्मणी योनि (ब्राह्मण वर्ण की माता) से क्षत्र (क्षत्रिय पिता) से उत्पन्न होते हैं, वे पूर्व अर्थात् क्षत्र के साधर्म्य के कारण एक नियतधर्म के अभाव वाले होते हैं अर्थात् विविध अनेक धर्माधिकार वाले कहे गये हैं ॥२१॥

मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षत्रोपजीविनः।
पुराणेष्वधिकारो मे विहितो ब्राह्मणैरिह॥२२॥

दृष्ट्वा धर्ममहं पृष्टो भवद्भिर्ब्रह्मवादिभिः।
तस्मात् सम्यग् भुवि ब्रूयां पुराणमृषिपूजितम्॥२३॥

प्रवक्ष्यामि महापुण्यं पुराणं पद्मसंज्ञितम्।
सहस्रं पञ्चपञ्चाशत् पञ्चखण्डैः समन्वितम्॥२४॥

तत्रादौ सृष्टिखण्डं स्याद् भूमिखण्डं ततः परम्।
स्वर्गखण्डं ततः पश्चात् ततः पातालखण्डकम्॥२५॥

पञ्चमं च ततः ख्यातमुत्तरं खण्डमुत्तमम्।
एतदेव महापद्ममुद्भूतं यन्मयं जगत्॥२६॥

तद्वृत्तान्ताश्रयं यस्मात् पाद्ममित्युच्यते ततः।
एतत्पुराणममलं विष्णुमाहात्म्यनिर्म्मलम्॥२७॥

क्षत्र धर्म की उपजीविका सूत का मध्यम धर्म रथ, हाथी तथा अश्वों का सञ्चालन है तथा चिकित्सा तृतीय धर्म है। हे ब्राह्मणों! आपने मुझे पुराणों में अधिकार दिया है, मेरा धर्म दृष्टि में रखकर आप जैसे ब्रह्मवादियों ने जो कुछ पूछा है–तदनुसार इसलिए पृथ्वी पर ऋषि पूजित पुराण अच्छी तरह से कह रहा हूँ॥२२-२३॥

पचपन हजार श्लोक वाला पाँच खण्डों में विभक्त महापुण्य यह पद्म नामक पुराण है॥२४॥

इसमें सबसे पहले सृष्टि खण्ड की कथा होगी, तत्पश्चात् भूमिखण्ड उसके बाद स्वर्गखण्ड, उसके बाद पातालखण्ड॥२५॥

अन्त में सबसे श्रेष्ठ पञ्चम खण्ड उत्तरखण्ड की कथा होगी। यह महा पद्म उत्पन्न हुआ है जिससे जगत् का निर्माण हुआ॥२६॥

उस पद्म तथा पद्ममय जगत् के वृत्तान्त से सम्बद्ध होने के कारण यह पुराण पाद्म कहा जाता है। विष्णु के निर्मल माहात्म्य से युक्त यह पुराण सर्वथा अमल (पूर्णतया दोषशून्य) है॥२७॥

इत्थमुपक्रम्य लोमहर्षणपुत्रोऽयमुग्रश्रवाः सूतः पञ्चभिः खण्डैः परिच्छिद्य सर्वं पाद्मं श्रावयामास। स चायमुग्रश्रवसः सर्वप्राथमिकपुराणकथनंप्रस्ताव इत्यप्येतल्लेखस्वारस्येनावगम्यते। किन्तु, अस्मिन्नेवोग्रश्रवसः पाद्मे उत्तरखण्डे पाद्मपुराणस्य लोमहर्षणश्रावितपुराण दशकान्तर्गतत्वं स्मर्य्यते तदेतदुभयवचनविरोधाल्लोमहर्षणप्रातिनिध्येनाप्युग्रश्रवसः पुराणवक्तृत्वं सिध्यतीति सुव्यक्तम्। तथा च विज्ञायते लोमहर्षणंस्तावत्तत्र गत्वा आदिखण्ड-भूमिखण्ड-ब्रह्मखण्ड-पातालखण्ड-क्रियाखण्डोत्तरखडात्मकैः षड्भिः खण्डैः परिच्छिद्य पाद्मं श्रावयितुं प्रवर्तमानोऽपि केनचित्कारणेन आदिखण्ड-ब्रह्मखण्ड-क्रियाखण्डान्येव श्रावयामास नतु सावशेषं श्रावयितुं लब्धावसरो बभूव। अतएवावशिष्टपूरणेन सावशेषं यथास्यात्तथा पाद्मं श्रोतुमीहमानैरपि तैः शौनकादिभिर्मुनिभिरस्य न वागतस्य सूतपुत्रस्योग्रश्रवसो विद्यापरीक्षणार्थमिवादितः पाद्मं श्रावयितु मिव प्रेर्य्यमाण उग्रश्रवा महोत्साहो भूमिखण्ड-पातालखण्डोत्तरखण्डमात्रकथनौचित्येऽपि जिज्ञासासामान्यात् सम्पूर्णमेव पाद्ममादितः सृष्टिखण्ड-भूमिखण्ड-स्वर्गखण्ड पातालखण्डोत्तरखण्डात्मकैः पञ्चभिःखण्डैः परिच्छिद्य

इस प्रकार प्रारम्भ कर लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा सूत ने पाँच खण्डों में सीमित कर समस्त पद्मपुराण सुनाया। उग्रश्रवा का यह सर्वप्रथम पुराण-कथन प्रस्ताव है जो इस लेख के स्वारस्य से ज्ञात होता है। परन्तु उग्रश्रवा के सुनाए इसी पद्म के उत्तरखण्ड में इसे अर्थात् पद्मपुराण को लोमहर्षण के द्वारा श्रावित दश पुराणों के अन्तर्गत भी बताया गया है। इस प्रकार इन दोनों वचनों में विरोध के कारण लोमंहर्षण के प्रतिनिधि के रूप में भी उग्रश्रवा का पुराणवक्तृत्व सिद्ध होता है यह सर्वथा स्पष्ट है। लोमहर्षण के वहाँ जाकर आदिखण्ड, भूमिखण्ड, ब्रह्मखण्ड, पातालखण्ड, क्रियाखण्ड और उत्तरखण्डात्मक छः खण्डों के द्वारा विभक्त कर पद्मपुराण को सुनाने के लिए प्रवृत्त होने पर भी किसी कारण से आदिखण्ड, ब्रह्मखण्ड और क्रियाखण्ड का ही श्रवण करवाया गया। शेष भाग सहित सम्पूर्ण पुराण को सुनाने के लिए उन्होंने अवसर प्राप्त नहीं किया। इसलिए अवशिष्ट के द्वारा पूर्ति से (शेष सम्पूर्ण) पद्मपुराण को जैसे-तैसे सुनने के इच्छुक भी उन शौनक आदि मुनियों के द्वारा नवागत सूत पुत्र उग्रश्रवा की विद्या के परीक्षण के लिए ही मानों आदि से पद्मपुराण सुनाने के लिए प्रेरित किये गये हुए की भाँति उग्रश्रवा ने अत्यधिक उत्साह से युक्त होकर भूमिखण्ड, पातालखण्ड और उत्तरखण्ड मात्र का कथन उचित होने पर भी जिज्ञासा-सामान्य के कारण सम्पूर्ण ही पद्म पुराण को आदि से सृष्टिखण्ड भूमिखण्ड, स्वर्गखण्ड, पातालखण्ड और उत्तरखण्डात्मक पाँच खण्डों के द्वारा विभाजित कर सुनाया। इस प्रकार

संश्रावयामास। तथा चेदं पाद्मं पुराणं द्विविधमभूत् लोमहर्षणप्रोक्तं षट्खण्डमेकम् (१) उग्रश्रवःप्रोक्तं पञ्चखण्डं द्वितीयम् (२) तत्र लौमहर्षणमसम्पूर्णं भूमिखण्ड-पातालखण्डोत्तर-खण्डानुपलब्धेः। औग्रश्रवसमपि स्वर्गखण्डविकलमेवास्माकमुपलब्धम्। न चौग्रश्रवसघटकानां भूमिखण्डपातालखण्डोत्तरखण्डानां लौमहर्षणघटकत्वमाक्षेप्तव्यम्, तेषामौग्रश्रवसत्वस्य तदक्षरस्वारस्येनैवावगमात्। तथाहि भूमिखण्डस्यान्ते—

भूमिखण्डं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।
मुच्यते सर्वदुःखेभ्यः सर्वरोगैः प्रमुच्यते॥१॥

इति भूमिखण्डस्तुतिमुक्त्वा तत्प्रसङ्गेन सम्पूर्णस्य पाद्मस्य स्तुतिः पठ्यते—

श्रोतव्यं हि प्रयत्नेन पद्माख्यं पापनाशनम्।
प्रथमं सृष्टिखण्डं तु द्वितीयं भूमिखण्डकम्॥१॥
तृतीयं स्वर्गखण्डं च पातालं तु चतुर्थकम्।
पञ्चमं चोत्तरंखण्डं सर्वपापप्रणाशनम्॥२॥

यह पद्मपुराण दो प्रकार का हो गया। एक लोमहर्षण के द्वारा कहा गया छः खण्डों वाला तथा दूसरा उग्रश्रवा के द्वारा कहा गया पाँच खण्डों वाला। क्योंकि उसमें लोमहर्षण के द्वारा कहा गया पद्मपुराण अपूर्ण है इसमें भूमिखण्ड, पातालखण्ड, उत्तरखण्ड प्राप्त नहीं होने से। उग्रश्रवा द्वारा श्रावित भाग भी हमको स्वर्गखण्ड से रहित ही उपलब्ध हुआ है। ऐसा भी नहीं है कि उग्रश्रवा के (सुनाये गये) भूमिखण्ड, पातालखण्ड और उत्तरखण्डों को लोमहर्षण के घटक के रूप में मान ले, क्योंकि वे उग्रश्रवा के ही है ऐसा उसके वाक्य-विन्यास से भी ज्ञात होता है। जैसा कि भूमिखण्ड में कहा—

भूमिखण्ड को सुनकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। सब दुःख रोगों से भी मुक्त होता है॥१॥

इस प्रकार भूमिखण्ड की फलस्तुति कहकर उसी प्रसङ्ग के माध्यम से सम्पूर्ण पद्मपुराण की भी फलस्तुति कर दी गयी है :—

पापों के नाशक पद्मपुराण का प्रयत्नपूर्वक श्रवण करना चाहिए। प्रथम सृष्टिखण्ड, द्वितीय भूमिखण्ड॥१॥

तृतीय स्वर्गखण्ड, चतुर्थ पातालखण्ड तथा पाँचवा सब पापों का नाश करने वाला उत्तरखण्ड है॥२॥

यः शृणोति नरो भक्त्या पञ्चखण्डान्यनुक्रमात्।
गोप्रदानसहस्रस्य मानवो लभते फलम्॥३॥

इत्येवं पञ्चखण्डोपादानस्य भूमिखण्डस्य पञ्चखण्डात्मकपद्मपुराणावयवत्वं बोध्यते। एवं पातालखण्डस्याप्युपक्रमे—

ऋषय ऊचुः।

श्रुतं सर्वं महाभाग! स्वर्गखण्डं मनोहरम्।
त्वत्तोऽधुना वदायुष्मञ् छ्रीरामचरितं हि नः॥१॥

इत्येवं पूर्वापरसंगतिप्रतिबोधके वाक्येऽस्य पातालखण्डस्य स्वर्गखण्डोत्तरत्वप्रतिपादने-नौग्रश्रवसाङ्गत्वस्य स्पष्टं प्रतीयमानत्वात्। यद्यपि लौमहर्षणे ब्रह्मखण्डमपि स्वर्गोत्तरनाम्ना व्यपदिश्यते। अथापि स्वर्गखण्डपदस्य औग्रश्रवस स्वर्गखण्डात्मकविषयलाभे दूरोपस्थिता स्वर्गोत्तरखण्डपरता नावकल्पते इति बोध्यम्। एवमुत्तरखण्डेऽप्युपक्रमे—

जो मनुष्य भक्ति से पाँचों खण्डों का अनुक्रम से श्रवण करता है उस मानव को हजार गायों के दान का फल मिलता है॥३॥

इस प्रकार पाँच खण्डों का उपादान बताने वाला भूमिखण्ड, पाँच खण्डों वाले पद्मपुराण के अवयव के रूप में ज्ञात होता है। इसी प्रकार पातालखण्ड के आरम्भ में भी ऐसा कथन प्राप्त है :—

ऋषियों ने कहा—

हे महाभाग! मनोहर स्वर्गखण्ड आपसे सम्पूर्ण सुन लिया है आयुष्मन् सूत अब हमको श्रीराम का चरित बतलाये॥१॥

इस प्रकार पूर्वापर सङ्गति के प्रतिबोधक वाक्य में इस पातालखण्ड के स्वर्गखण्ड के पश्चात् प्रतिपादन से उग्रश्रवा के अङ्गत्व की स्पष्ट प्रतीति होती है यद्यपि लोमहर्षण ने ब्रह्मखण्ड को भी स्वर्गोत्तर नाम से कहा है तथापि स्वर्गखण्ड शब्द का उग्रश्रवा के स्वर्गखण्डात्मक पद की विषय प्राप्ति होने पर भी दूर उपस्थित स्वर्गोत्तर खण्डपरकता में समर्थ नहीं होती है यह भलीभाँति समझ लेना चाहिये। उत्तरखण्ड के प्रारम्भ में भी ऋषि बोले—

ऋषय ऊचुः।

श्रुतं पातालखण्डं च त्वयाख्यातं विदांवर।
नानाख्यानसमायुक्तं परमानन्ददायकम्॥१॥
अधुना श्रोतुमिच्छामो भगवद्भक्तिवर्द्धनम्।
पाद्मे यच्छेषमस्तीह तद्ब्रूहि कृपया गुरो॥२॥

इत्येवं सङ्गतिबन्धात् पातालखण्डोत्तरत्त्वेनाभिमतस्यास्योत्तरखण्डस्य लौमहर्षणे क्रियाखण्डोत्तरस्थानोचितोत्तरखण्डात्मकत्वासम्भवात्। किञ्च एतस्मिन् पाद्मोतरखण्डे—

कलौसहस्रमब्दानामधुना प्रगतं द्विज।
परीक्षितो जन्मकालात् समाप्तिं नीयतां मखः॥

इत्युक्त्या एतदुत्तरखण्डान्वितपाद्मस्य शौनकयज्ञावसानकालिकत्वप्रतिपादनादस्य लौमहर्षणपाद्मस्य चाभावस्य स्पष्टं प्रतिबोधितत्वात् अत्रैव खण्डे-पाद्मं वैष्णवं चेत्याद्युपक्रम्य

ऋषियों ने कहा—

हे विद्वत्वर्य तुम्हारे द्वारा कहा गया परम आनन्ददायक नाना आख्यानों से युक्त पातालखण्ड सुन लिया गया है॥१॥

अब पद्मपुराण में जो शेष भगवद्भक्ति वर्द्धक भाग है उसको हम सुनना चाहते हैं इसलिए हे गुरो! वह बतलाइये॥२॥

इस प्रकार सङ्गतिबद्धता के कारण उग्रश्रवा के पातालखण्ड के उत्तरवर्त्ती रूप में अभिमत उत्तरखण्ड का लोमहर्षण के क्रियाखण्ड के उत्तर स्थान के रूप में उचित होने से पुराण की उत्तरखण्डात्मकता सम्भव नहीं है। इस पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में—

"हे द्विज! परीक्षित् के जन्म से कलियुग के एक हजार वर्ष अब बीत गये हैं। अतः यज्ञ को पूर्ण कीजिए"

इस उक्ति से उत्तरखण्ड से युक्त इस पद्मपुराण के शौनक यज्ञ के समाप्ति काल में कथा की निष्पत्ति के प्रतिपादन से इसका लोमहर्षण के पद्मपुराण के भाग का न होना स्पष्ट रूप से प्रपिादित हो रहा है। इसी खण्ड में पद्म और विष्णु इत्यादि का प्रारम्भ कर

एतानि तु पुराणानि द्वापरान्ते श्रुतानि हि।
शौनकाद्यैर्मुनिवरैर्यज्ञारम्भात् पुरैव हि॥

इत्युक्त्या लौमहर्षणपाद्मस्य यज्ञारम्भपूर्वकालिकत्वप्रतिपादनेनैतत्खण्डस्य तदङ्गत्वा-संभवात्। तस्मान्निःसन्दिग्धमेतानि औग्रश्रवसपाद्माङ्गानीति प्रतिपद्यते। अथैवमेव औग्रश्रवसे पाद्मे तृतीयं स्वर्गखण्डंनोपलभ्यते तत्रापि कैश्चिल्लौमहर्षणपाद्मस्यादिखण्डं सर्गखण्डाख्यया आदिसर्गखण्डाख्यया वा प्रसिद्धं प्रक्षिप्यस्थानपूर्तिं कुरुते, सर्गस्थाने च स्वर्गशब्दं प्रकल्प्य स्वर्गखण्डमादिस्वर्गखण्डमिति च व्यपदेष्टुं प्रसहते तदसत् तस्य लौमहर्षणप्रोक्तत्वात् पुराणो-पक्रमप्रकरणोपक्रान्तत्वाच्चौग्रश्रवसेषु पञ्चखण्डेषु तृतीयस्थान संपातानर्हत्वात्, तथाहि—

एकदा मुनयः सर्वे ज्वलज्ज्वलनसंनिभाः।
नैमिषं समुपायाताः शौनकं द्रष्टुमुत्सुकाः॥१॥
कथान्तेषु ततस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्।
आजगाम महातेजाः सूतस्तत्र महाद्युतिः॥२॥

"ये पुराण द्वापर के अन्त में शौनक आदि मुनि वर्ग के द्वारा यज्ञ के आरम्भ होने के पहले ही सुने गये थे।"

इस उक्ति के कहने से लोमहर्षण का पद्मपुराण यज्ञारम्भ से पूर्व कालिकत्व प्रतिपादित होता है। इसलिए यह खण्ड उसका (लोमहर्षण वाला) अङ्ग नहीं हो सकता है अतः निःसन्दिग्ध रूप से यह उग्रश्रवा के पद्मपुराण के अङ्ग हैं ऐसा ज्ञात होता है। इसी प्रकार उग्रश्रवा के पद्मपुराण में तृतीय 'स्वर्गखण्ड' उपलब्ध नहीं होता है उसमें भी कुछ विद्वानों के द्वारा लोमहर्षण के पद्मपुराण के आदिखण्ड की स्वर्गखण्ड के नाम से अथवा आदि सर्गखण्ड नाम से प्रसिद्धि कर प्रक्षेप करके स्थान पूर्ति मान ली गयी है। सर्ग के स्थान पर स्वर्ग शब्द की परिकल्पना कर स्वर्गखण्ड आदि स्वर्गखण्ड कहने का साहस करते हैं वह ठीक नहीं है क्योंकि लोमहर्षण के द्वारा प्रोक्त होने के कारण पुराणों के उपक्रम प्रकरण में उपक्रान्त होने के कारण उग्रश्रवा के पाँच खण्डों में यह तृतीय स्थान कैसे ले सकता है। जैसा कि अधोदत्त श्लोक कुलकों से ज्ञात होता है—

एक बार जलती हुई अग्नि के समान तेजस्वी सब मुनि शौनक के दर्शन करने की उत्सुकता से नैमिषारण्य में आये॥१॥

उन विशुद्ध अन्तकरणों वाले मुनियों के वार्तालाप के अन्त में महातेजस्वी महाद्युति व्यास शिष्य लोमहर्षण नामक सूत वहाँ आ पहुँचे॥२॥

व्यासशिष्यः पुराणज्ञो लोमहर्षणसंज्ञकः।
तं पप्रच्छुर्महाभागाः शौनकाद्यास्तपोधनाः ॥३॥

पौराणिक महाबुद्धे रोमहर्षण सुव्रत।
त्वत्तः श्रुता महापुण्याःपुरा पौराणिकीः कथाः ॥४॥

सांप्रतं च प्रवृत्ताः स्म कथायां सक्षणा हरेः।
पुनः पुराणमाचक्ष्व हरिवार्त्तासमन्वितम् ॥५॥

सूत उवाच।

साधु साधु महाभागाः साधु पृष्टं तपोधनाः।
तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि पुराणं पद्मसंज्ञकम् ॥६॥

सहस्रं पञ्चपञ्चाशत् षड्भिः खण्डैः समन्वितम्।
तत्रादावादिखण्डं स्याद् भूमिखण्डं ततः परम् ॥७॥

ब्रह्मखण्डं च तत्पश्चात् ततः पातालखण्डकम्।
क्रियाखण्डं ततः ख्यातमुत्तरं खण्डमुत्तमम् ॥८॥

शौनक आदि महाभाग तपस्वियों ने उसको पूछा—हे महाबुद्धे! सुव्रत! पौराणिक रोमहर्षण! पहले भी तुम से हमने महापुण्य युक्त पौराणिक कथाएँ सुनी हैं ॥३-४॥

इस समय हरि कथा सुनने को हमारा अतीव उत्सुक है इसलिए हरिवार्ता से सम्बन्धी पुराण कथा करो ॥५॥

सूत ने कहा—

हे महाभाग तपस्वियो! आप धन्य हैं आपने बहुत अच्छा पूछा है मैं भगवान् हरि को प्रणाम कर पद्म पुराण की कथा कह रहा हूँ ॥६॥

जो कि पचपन हजार श्लोकों तथा छः खण्डों में है उसमें प्रारम्भ में आदिखण्ड, तत्पश्चात् भूमिखण्ड ॥७॥

तदनन्तर ब्रह्मखण्ड, उसके बाद पातालखण्ड, उसके बाद क्रियाखण्ड प्रसिद्ध है, तदनन्तर उत्तम उत्तरखण्ड है ॥८॥

एतदेव महापद्ममद्भुतं यन्मयं जगत्।
तद्वृत्तान्ताश्रयं तस्मात्पाद्ममित्युच्यते बुधैः ॥९॥
तत्रादिखण्डं वक्ष्यामि पुण्यं पापविनाशनम्।

इतीत्थं हि तस्योपक्रमः। तस्मान्नेदं लौमहर्षणं सर्गखण्डमौग्रश्रवसं स्वर्गखण्डं भवितुमर्हति। खण्डप्राथमिकत्वोचितमपि वा तृतीयस्थानासादनयोग्यतां धत्ते, तस्मादौग्रश्रवसं स्वर्गखण्डमतिरिक्तमेवास्तीत्यन्वेष्टव्यम्। अथैवं लौमहर्षणे पाद्मेऽप्यनुपलभ्यमानानां भूमिखण्डपातालखण्डोत्तरखण्डानां सत्ता संभाव्यते। प्रतिज्ञातखण्डक्रमानुसारेण प्रथम-तृतीय-पञ्चमखण्डोपलब्ध्या द्वितीय-चतुर्थ-षष्ठखण्डानामपि प्रतिपादनावश्यम्भावात् इत्याहुः। वयं तु ब्रूमः। अत्रैतेषूपलभ्यमानेषु लौमहर्षणपाद्मखण्डेषु सर्गखण्डाख्यमादिखण्डमेव लोमहर्षण-प्रोक्तं प्राचीनम्। आदिखण्डमुक्त्वा केनचित्कारणेन सम्पूर्णं वक्तुमलब्धावसरेणैव तेन सम्पूर्ण-पाद्मश्रावणाय उग्रश्रवःप्रेषणात् न तु मध्ये मध्ये एकैकं खण्डं त्यक्त्वा तदुत्तरखण्डकथनमवकल्पते।

यही अद्भुत महापद्म है जिससे जगत् उत्पन्न हुआ है। उस वृत्तान्त से सम्बन्धित होने के कारण विद्वानों के द्वारा यह पाद्म कहा जाता है। उस में पापों के विनाशक, पुण्य आदि खण्ड की कथा कहूँगा ॥९॥

इस प्रकार यह उसका उपक्रम है इस कारण से लोमहर्षण का सर्गखण्ड, उग्रश्रवा का स्वर्गखण्ड नहीं हो सकता। उचित खण्ड की प्राथमिकता उचित होने पर भी तृतीय स्थान की योग्यता धारण करता है इसलिए उग्रश्रवा का स्वर्गखण्ड अतिरिक्त ही है। इसका अन्वेषण करना चाहिए। इस प्रकार लोमहर्षण के पद्मपुराण में भी प्राप्त न होने वाले भूमिखण्ड, पातालखण्ड और उत्तरखण्ड की सता सम्भावित है। प्रतिज्ञात खण्ड के क्रम के अनुसार प्रथम, तृतीय, पञ्चम खण्ड की उपलब्धि से द्वितीय, चतुर्थ तथा छठा खण्डों का भी प्रतिपादन अवश्य हुआ होगा ऐसा कहते हैं। हम तो यह कहते हैं कि यहाँ इन उपलब्ध होने वाले लोमहर्षण के पद्मपुराण के खण्डों में सर्गखण्ड नाम का आदिखण्ड ही लोमहर्षण के द्वारा कथित प्राचीन है। आदिखण्ड को कहकर किसी कारण से सम्पूर्ण को कहने का अवसर प्राप्त न कर पाने से ही उसने सम्पूर्ण पद्मपुराण को सुनाने के लिए उग्रश्रवा को भेजा इससे स्पष्ट है कि बीच-बीच में एक-एक खण्ड को छोड़कर उसके उत्तरवर्ती खण्ड का कथन जचता नहीं है।

एकदा मुनयः सर्वे सर्वलोकहितैषिणः।
सुरम्ये नैमिषारण्ये गोष्ठीं चक्रुर्मनोरमां॥

इति पुराणोपक्रमाख्यप्रकरणोपक्रान्तस्य क्रियायोगसारस्य स्वतन्त्रप्रकरणग्रन्थत्वेसम्भ-वेऽपि लौमहर्षणपाद्मपुराणाङ्गत्वायुक्तत्वात् प्रथमेतरखण्डेषु पुराणोपक्रमाख्यप्रकरणोपक्रमस्य पुराणलेखपरिपाटीविरुद्धत्वात्। तस्मादादिसर्गखण्डमात्रं लोमहर्षणप्रोक्तं पद्मपुराणं भवति। अथ सृष्टिखण्डादिपञ्चखण्डोपेतमौग्रश्रवसं पद्मपुराणं विभिन्नं भवतीतीत्थं व्याख्यातं द्रष्टव्यम्।

न चेदं पद्मपुराणं द्विविधमिति श्रुत्वा आश्चर्य्यवदालोच्यम्, कर्तृभेदेन निबन्धस्याव श्यम्भावात्। सन्ति हि अनेकनिबन्धाः प्रत्येकपुराणस्य यथा। चतुःश्लोकीभागवतमन्यत् सप्तश्लोकी भागवतमन्यत् अष्टादशसहस्रश्लोकं वा लोमहर्षणप्रोक्तं भागवतमन्यन् अष्टादश-सहस्रश्लोकबद्धमौग्रश्रवसं च भागवतं नामान्यद् इतीत्थमनेकानि भागवतान्युपलभ्यन्ते एवमेवान्येषामप्यष्टादशशाखाबद्धानां पुराणानां प्रत्येकस्य तत्तत्संवादानुरोधिनो निबन्धाः

एक बार सब लोगों के हितैषी सभी मुनियों ने रमणीय नैमिषारण्य में मनोहर गोष्ठी का आयोजन किया।

इस प्रकार पुराण के उपक्रम नामक प्रकरण के रूप में प्रारब्ध क्रियायोगसार के स्वतन्त्र प्रकरण ग्रन्थ की संभावना होने पर भी लोमहर्षण के पद्मपुराण का अङ्ग नहीं है अनुचित होने के कारण, प्रथम से भिन्न खण्डों में पुराणोपक्रम नामक प्रकरण का आरम्भ पुराण लेखन की परिपाटी के विरुद्ध है। इस कारण से आदि सर्गखण्ड मात्र ही लोमहर्षण के द्वारा कहा गया है यही उसके पद्मपुराण का रूप है। सृष्टि खण्डादि पाँच खण्डों से युक्त उग्रश्रवा का पद्मपुराण विभिन्न है। इस प्रकार दो पद्मपुराण कहे गये हैं यह जानना चाहिए।

यह पद्मपुराण दो प्रकार का है यह सुनकर आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि कर्ता के भेद से ग्रन्थ भेद अवश्यम्भावी है। प्रत्येक पुराण के अनेक ग्रन्थ है जैसे (१) चार श्लोक वाला भागवत अन्य है (२) सात श्लोक वाला भागवत अन्य है (३) अठारह हजार श्लोक वाला लोमहर्षण द्वारा कथित भागवत अन्य है। (४) अठारह हजार श्लोकों में निबद्ध ही उग्रश्रवा का भागवत अन्य है, इस प्रकार अनेक भागवत उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार इन अठारह शाखाओं वाले पुराणों में प्रत्येक के तत् तत् संवाद के अनुरोध वाले निबन्ध पृथक् रूप से ही हुए हैं ऐसा जाना जाता है। ब्राह्म पद्म आदि विशिष्ट नाम

पार्थक्येनैवाभूवन्निति विज्ञायते। संज्ञाविशेषास्तु ब्राह्मपाद्मादयः न विभिद्यन्ते तेष्वपि संवाद-विशेषविभिन्नेषु नानानिबन्धेषु प्रत्येकस्मिन् ग्रन्थकर्तृस्वारस्यानुरोधेन ग्रन्थसंख्याभेदः प्रकरण-विच्छेदविभेदश्च संसिद्धः यथैतस्मिन्नेव पाद्मेतावदालोक्यताम्। लोमहर्षणप्रोक्तं पाद्ममादितो-ऽन्यसंवादपरम्परासिद्धार्थनिबद्धम्। तदुक्तम् तत्रैव—

लोमहर्षण उवाच।

देवदेवो हरिर्यद्वै ब्रह्मणे प्रोक्तवान् पुरा।
ब्रह्मा तन्नारदायाह नारदोऽस्मद्गुरोः पुरः ॥१॥
व्यासः सर्वपुराणानि सेतिहासानि संहिताः।
अध्यापयामास मुहुर्मामतिप्रियमात्मनः ॥२॥
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि पुराणमतिदुर्लभम्। इति।

अत्र विष्णुब्रह्मसंवादे शुद्धं पाद्मम् १। ततो ब्रह्मनारदसंवादे विष्णुब्रह्मसंवादोऽपि विषयीभवतीति विभिन्नो निबन्धः पाद्मस्य २। ततो नारदव्याससंवादे पूर्वसंवादौ विषयीभवत

तो भिन्न नहीं है उनमें भी संवाद विशेष के कारण विभिन्न नाना निबन्धों में प्रत्येक में ग्रन्थकर्ता के स्वारस्य के अनुरोध से ग्रन्थ संख्या का भेद और प्रकरण विच्छेद का भेद स्वभाव सिद्ध है जैसा कि पद्मपुराण में ही अवलोकन कीजिए। लोमहर्षण के द्वारा कथित पद्मपुराण आदि से ही संवादों की भिन्न-भिन्न परम्परा से ग्रथित है जैसा कि उसी में कहा है—

लोमहर्षण ने कहा—

देवाधिदेव हरि ने सबसे पहले ब्रह्मा को कहा, ब्रह्मा ने नारद को कहा और नारद ने हमारे गुरु को कहा ॥१॥

व्यास ने अपने अतिप्रिय मुझे इतिहास सहित सारे पुराण और संहिताओं का बार-बार अध्यापन किया। उस अत्यन्त दुर्लभ पुराण का मैं तुम्हारे समक्ष प्रवचन करूँगा ॥२॥

यहाँ विष्णु ब्रह्मसंवाद में शुद्ध पद्मपुराण है (१) तत्पश्चात् ब्रह्म नारद संवाद में विष्णु और ब्रह्म का संवाद भी विषय बन जुड़ जाता है। इस प्रकार पद्मपुराण का निबन्धन (ग्रथन) कुछ भिन्न हो जाता है (२) तत्पश्चात् नारद और व्यास के संवाद में पूर्व के दो

इत्यन्यो निबन्धः पाद्मस्य ३। ततो व्याससूतसंवादे पूर्वे संवादास्त्रयोऽपि विषयीभवन्तीत्यपरो निबन्धः ४। अथेदानीं सूतशौनकसंवादे ते चत्वारोपि प्राक्तनाः संवादा विषयीभूता इति स विलक्षण एव निबन्धः पञ्चमो य इदानीमुपलभ्यते लौमहर्षणः पद्मपुराणाख्यः स चायमेव पञ्चमसंवादसिद्धः पाद्मनिबन्धः षट्खण्डः पञ्चपञ्चाशत् सहस्रश्लोकबद्धश्च न तु पूर्वेऽपीति सुव्यक्तम्। एषां पञ्चानामपि निबन्धानामाकारप्रकारभेदेऽपि मुख्योद्दिष्टविषयैक्यानुरोधेन पाद्म-संज्ञा न विरुध्यते। इत्थमन्यदुग्रश्रवःप्रोक्तं पाद्ममादितोऽन्यसंवादपरम्परासिद्धार्थनिबद्धम् तदुक्तं तत्रैव—

देवदेवो हरिर्यद्वै ब्रह्मणे प्रोक्तवान् पुरा।
ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये॥१॥

एतदेव च वै ब्रह्मा पाद्मं लोके जगाद वै।
सर्वभूताश्रयं तच्च पाद्ममित्युच्यते बुधैः॥२॥

विषय भी गुँथ जाते हैं यह पद्म का अन्य निबन्ध हो जाता है (३) तत्पश्चात् व्यास सूत संवाद में पूर्ववर्ती तीनों ही संवाद विषय हो जाते हैं यह अन्य निबन्ध है। (४) अब सूत शौनक संवाद में चारों ही पूर्ववर्ती संवाद विषयभूत हैं इस प्रकार वह पाँचवा विलक्षण ही निबन्ध है। (५) लोमहर्षण के पद्मपुराण के रूप में इस समय यही उपलब्ध होता है। यही पञ्चम संवाद से सिद्ध (अन्तिम रूप प्राप्त) पद्मपुराण का निबन्ध (ग्रन्थ) छः खण्डों वाला पचपन हजार श्लोकों में निबद्ध है न कि पूर्ववर्ती ५५ हजार पद्यों के हैं यह सुव्यक्त है इन पाँचों ही ग्रन्थों का आकार प्रकार का भेद होने पर भी मुख्य उदिष्ट विषय की एकता के अनुरोध से पद्म संज्ञा विरुद्ध नहीं होती है। इस प्रकार उग्रश्रवा द्वारा कथित पद्म अन्य है जो कि आदि से ही अन्य संवाद की परम्परा से सिद्ध विषय वाला है जैसा कि वहीं कहा गया है—

देवों के देव हरि ने जिसे पहले ब्रह्मा को पढ़ाया और ब्रह्मा ने उसे मरीचि को कहा॥१॥

ज्यों कात्यों इसी को ब्रह्मा ने लोक में पद्म नाम से कहा (मरीचि के द्वारा यह परम्परा आगे नहीं चली अतः ब्रह्मा ने पुलस्त्य को यह पुराण दिया उनके माध्यम से यह लोक में प्रसिद्ध हुआ, इस भाव को यह पद्यार्थ बता रहा है)॥२॥

पाद्मं तत् पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणीह पठ्यते।
पञ्चभिः पर्वभिः प्रोक्तं संक्षेपाद् व्यासकारितात् ।।३ ।।

(१) पौष्करं प्रथमं पर्व यत्रोत्पन्नः स्वयं विराट्।
(२) द्वितीयं तीर्थपर्वस्यात् सर्वग्रहगाश्रयम् ।।४ ।।
(३) तृतीयपर्वग्रहणा राजानो भूरिदक्षिणाः।
(४) वंशानुचरितं चैव चतुर्थे परिकीर्तितम् ।।५ ।।
(५) पञ्चमे मोक्षतत्त्वं च सर्वतत्त्वं निगद्यते।
(१) पौष्करे नवधासृष्टिः सर्वेषां ब्रह्मकारिता ।।६ ।।
देवतानां मुनीनां च पितृसर्गस्तथा परः।
(२) द्वितीये पर्वताश्चैव द्वीपाः सप्त ससागराः ।।७ ।।
(३) तृतीये रुद्रसर्गस्तु दक्षशापस्तथैव च।
(४) चतुर्थे संभवो राज्ञां सर्ववंशानुकीर्तनम् ।।८ ।।

सब प्राणियों का आश्रय वह पद्म ऐसा कहा जाता है। पद्म में पचपन हजार श्लोक हैं जो व्यास अर्थात् विस्तार युक्त कथन के संक्षिप्त रूप हैं। पाँच पर्वों में कहा गया है ।।३ ।।

(१) पौष्कर प्रथम पर्व है यहाँ स्वयं विराट उत्पन्न हुआ।
(२) द्वितीय तीर्थ पर्व है सब ग्रह समूहों का आश्रय है ।।४ ।।
(३) तृतीय पर्व में जिनका ग्रहण है वे प्रचुर दक्षिणा वाले राजा हैं।
(४) चतुर्थ पर्व में वंशानुचरित कहा गया है ।।५ ।।
(५) पञ्चम पर्व में मोक्षतत्त्व कहा गया है जो सभी तत्त्वों में महान् है।

(१) पौष्कर में नव प्रकार की ब्रह्म द्वारा की गयी तथा करायी गयी सृष्टि बतलायी गयी है ।।६ ।। देवताओं, मुनियों तथा पितृ-सर्ग का भी वर्णन है।

(२) द्वितीय में पर्वत, सागर सहित सात द्वीप वर्णित हैं।
(३) तृतीय में रुद्र सर्ग है तथा दक्ष के शाप का वर्णन है।
(४) चतुर्थ में सब राजाओं की उत्पत्ति प्रकरण में वंशों का अनुकीर्तन है।

(५) अन्त्येऽपवर्गसंस्थानं मोक्षशास्त्रानुकीर्तनम्।
सर्वमेतत्पुराणेऽस्मिन् कथयिष्यामि वो द्विजाः ॥९॥
इति। (१/५७-६६)

तत्र पूर्वनिर्दिष्टमेव विष्णुब्रह्म-संवादसिद्धं पाद्मं ब्रह्मणा मरीचये प्रोक्तम् तेन तु मरीचिना पुनरनाख्यानात्परम्परा न प्रचरिता। किन्तु ब्रह्मणैव पुनरन्यस्मै प्रोक्तम् कस्मै इत्याकांक्षायामुक्तं तेनैवाग्रे—

ब्रह्मणा यत्पुरा प्रोक्तं पुलस्त्याय महात्मने।
पुलस्त्येनाथ भीष्माय गङ्गाद्वारे प्रभाषितम् ॥१॥ २/४७

सूतेनानुक्रमेणेदं पुराणं संप्रकाशितम्।
ब्राह्मणेषु पुरा यच्च ब्रह्मणोक्तं सविस्तरम् ॥२॥ २/४८

तदित्थं ब्रह्मपुलस्त्यसंवादसिद्धे पाद्मनिबन्धे नत्त्वेव पुलस्त्यभीष्मादिसंवादा विषयीभवन्ति। एवं पुलस्त्यभीष्मसंवादे पूर्वसंवादोल्लेखाद्वैलक्षण्येऽपि सूतशौनकसंवादादयो

---

(५) अन्तिम में अपवर्ग संस्थानों में मोक्ष शास्त्र कथित है। हे द्विजो! मैं इस पुराण में आपको सब बतलाऊँगा ॥९॥

उनमें पूर्व निर्दिष्ट विष्णु ब्रह्मा के संवाद वाला ही पद्मपुराण ब्रह्मा के द्वारा मरीचि को कहा गया उस मरीचि ने पुनः शिष्यों में आख्यान नहीं करने से परम्परा को चालू नहीं रखा किन्तु ब्रह्मा ने ही पुनः अन्य को कहा। किसको कहा इस आकांक्षा में इसी में आगे कहा—

ब्रह्मा ने जो पहले महात्मा पुलस्त्य के समक्ष प्रवचन किया और पुलस्त्य ने गंगा के द्वार (हरिद्वार) में भीष्म को प्रवचन किया ॥१॥

सूत ने अनुक्रम से इस पुराण को सम्पादन से प्रकाशित किया जिसको प्राचीनकाल में विस्तारपूर्वक ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को कहा अथवा जो प्रारम्भ में ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक ऋषियों के प्रवचन रूप में था, उसे ब्रह्मा ने व्याख्यात्मक विस्तार के साथ कहा ॥२॥

इस प्रकार ब्रह्मा और पुलस्त्य संवाद से सिद्ध पद्म निबन्ध (ग्रन्थ) में पुलस्त्य और भीष्म संवाद विषय सम्भव नहीं हैं। इसी भाँति पुलस्त्य और भीष्म के संवाद में पूर्व संवाद के उल्लेख से विलक्षणता होने पर भी सूत और शौनक के संवाद आदि का

नोल्लिख्यन्ते। अथैतदेव पाद्मंलोमहर्षणाख्येन सूतेन मत्पित्रा पूर्वं सविस्तरं प्रकाशितम्। तदेव पाद्मं वेदव्यासेन पूर्वं पञ्चभिः पर्वभिरुपनिबद्धमासीत्। तेषु च पञ्चसु पर्वसु इत्थमित्थं विषया निर्द्दिष्टाः सन्तिः। तानेव सर्वान् विषयान् निबन्धांश्चालोच्य मयेदानीं पञ्चभिः खण्डैः परिच्छिद्य पञ्चपञ्चाशत्सहस्रश्लोकैर्युष्मभ्यमाख्यायते इत्यर्थः।

तदित्थमुग्रश्रवसः पाद्मपुराणवचनेन स्पष्टमनेकेषां पद्मपुराणानां विभिन्नाकारप्रकाराणां सत्ता सिध्यति। तथैवान्येषामपि ब्राह्मादिपुराणानामनेकानेकनिबन्धाः काले काले विभिन्न-कर्तृकाः सम्भाव्यन्ते तथा हि—ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं चेत्याद्यौग्रश्रवसः पाद्मोत्तरखण्डवचनेन ब्राह्मपाद्मवैष्णवानां नारदीय-भविष्यब्रह्मवैवर्त्तवाराहाणां वामनकौर्ममात्स्यानामाग्नेयार्द्धस्य च द्वापरान्ते शौनकादियज्ञारम्भात् प्रागेव लोमहर्षणप्रोक्तत्वं लभ्यते। इतरेषांतु सार्द्धसप्तपुराणानां वायवीय-भागवत-मार्कण्डेयानां लैङ्गस्कान्दगारुडब्रह्माण्डानामाग्नेयोत्तरमाहात्म्यस्य च कल्यब्द सहस्रपूर्तौ शौनकादियज्ञानवसानकाले लोमहर्षणपुत्रोग्रश्रवः प्रोक्तत्वमवसीयते। अथापीदानीमुपलभ्य मानेषु पुराणग्रन्थेषु औग्रश्रवसत्वेनाभिमतानामपि सप्तानां मध्यात्केषां-

---

उल्लेख सम्भव नहीं है। इसी पद्म पुराण को मेरे पिता लोमहर्षण सूत ने पहले विस्तारपूर्वक प्रकाशित किया जो पद्मपुराण वेद व्यास के द्वारा पहले ही पाँच पर्वों में उपनिबद्ध किया गया था। उन पाँच पर्वों में इस इस प्रकार के जो विषय निर्दिष्ट है उन्हीं सारे विषयों की और ग्रन्थों को आलोचना कर कर मेरे द्वारा इस समय पाँच खण्डों में सीमित कर पचपन हजार श्लोकों के द्वारा आप लोगों के लिए कहा जा रहा है।

इस प्रकार उग्रश्रवा के पद्मपुराण के वचन से विभिन्न आकार प्रकार वाले अनेक पद्मपुराण ग्रन्थों की स्पष्ट सता सिद्ध होती है। इसी प्रकार अन्य ब्राह्म आदि पुराणों के भी विभिन्न कर्तृक अनेकानेक निबन्ध समय-समय पर सम्भावित हैं। जैसे ब्राह्म पाद्म और वैष्णव इत्यादि। उग्रश्रवा के पाद्मोत्तर खण्ड के वचन से ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव, नारदीय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, वाराह, वामन, कौर्म और मात्स्य पुराणों के तथा आग्नेय अर्ध के द्वापर के अन्त में शौनक आदि के यज्ञ से पहले ही लोमहर्षण द्वारा प्रवचन करने का पता चलता है। अन्य वायवीय, भागवत, मार्कण्डेय लैङ्ग, स्कान्द, गारुड़, ब्रह्माण्ड नाम के पूरे पुराणों का और आग्नेयोत्तर माहात्म्य रूप साढ़े सात पुराणों का कलियुग के हजार वर्ष पूर्ण होने पर शौनक आदि के यज्ञ के अवसानकाल में लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा के प्रवचन का ज्ञान होता है। तथापि इस समय उपलब्ध होने वाले पुराण ग्रन्थों में उग्रश्रवा

च्चिल्लोमहर्षणप्रोक्तत्वं दृश्यते तथान्येषां लौमहर्षणत्वेनाभिमतानामपि दशानां मध्यात् केषांचिदुग्रश्रवः प्रोक्तत्वं दृश्यते। यथा—लिङ्गपुराणे—

दृष्ट्वातमतिविश्वस्तं विद्वांसं रोमहर्षणम्।
अपृच्छँश्च ततः सूतमृषिं-सर्वे तपोधनाः॥ (१ अ. १० श्लोक)

कथं पूज्यो महादेवो लिङ्गमूर्तिर्महेश्वरः।
वक्तुमर्हसि चास्माकं रोमहर्षण सांप्रतम्॥ (२५ अ. १ श्लोक)

इत्येवमाद्युक्त्या तस्य रोमहर्षण-शौनकसंवादसिद्धत्वं लभ्यते। वायुपुराणस्यापि संबुध्यतन्नाम्नो निरुक्त्यादिना प्रशंसनाद्रोमहर्षणप्रोक्तत्वं सिद्ध्यति। एवं मत्स्यपुराणे यद्यपि लोमहर्षणोग्रश्रवसोर्नामोल्लेखो नास्ति। अथापि दीर्घसत्रान्ते प्रकथनादौग्रश्रवसत्वं विज्ञायते। पाद्मोत्तरवचनेन लोमहर्षणप्रोक्तमात्स्यस्य यत्रारम्भतः पूर्वकालिकत्वावगमात्। अथ ब्रह्मवैवर्तं-

---

के प्रोक्त सात पुराणों के बीच में भी कुछ लोमहर्षण के द्वारा कहे गये ज्ञात होते हैं तथा लोमहर्षण के प्रोक्त दस पुराणों के बीच में भी कुछ का उग्रश्रवा के द्वारा कथित होने का ज्ञान होता है, जैसा कि लिङ्ग पुराण में कहा है—

सभी तपस्वी ऋषियों ने अत्यन्त विश्वत विद्वान् सूत रोमहर्षण को देखकर यह पूछा—हे रोमहर्षण! लिङ्ग मूर्ति महेश्वर महादेव कैसे पूज्य हैं! इस समय आप हमें यही कहिये।

इस प्रकार के कथनों से लिङ्ग पुराण का रोमहर्षण शौनक संवाद रूप सिद्ध होना प्राप्त होता है। वायु पुराण में रोमहर्षण को सम्बोधित कर उसके नाम के निर्वचन से उसकी शौनकादि ऋषियों द्वारा की गयी प्रशंसा से वायुपुराण की भी रोमहर्षण प्रोक्तता सिद्ध हो रही है। मत्स्यपुराण में यद्यपि लोमहर्षण और उग्रश्रवा का नामोल्लेख नहीं है तथापि दीर्घ सत्र के अन्त में उसका प्रवचन होने के कारण वह उग्रश्रवा द्वारा प्रोक्त ज्ञात होता है जबकि पाद्मोतर वचन से लोमहर्षण द्वारा प्रोक्त मत्स्य का आरम्भ से ही पूर्व कालिकत्व ज्ञात होता है। इस समय उपलब्ध होने वाले ब्रह्मवैवर्त पुराण के भी सौति शौनक संवाद के द्वारा प्रवृत्त होने से उग्रश्रवा कृत होने का अवधारण किया जाता है।

स्यापीदानीमुपलभ्यमानस्य सौतिशौनक-संवादमुखेन प्रवृत्ततत्वादौग्रश्रवसत्वमवधार्यते लोम-हर्षणसौतित्वसंभवेऽपि—

सुप्रसिद्धपदार्था ये स्वतन्त्रा लोक विश्रुताः ।
शास्त्रार्थ स्तेषु कर्तव्यः शब्देषु न तदुक्तिषु ।।[1]

इति न्यायेनात्र पुराणे उग्रश्रवसोरेव सूतपदेन ग्रहणात् सौतिपदेन चोग्रश्रवस एव ग्रहणौचित्यात्। न चेत्थं सति पाद्मविरोधः। तत्रैवोग्रश्रवसा प्रोक्ते पाद्मे पाद्मस्य लोम-हर्षणप्रोक्तत्वप्रतिपादनादवश्यं लोमहर्षणप्रोक्तानामपि केषांचित्पुराणानामुत्तरकाले उग्रश्रवः-प्रोक्तत्वनिबन्धवत्वावगमात्। तदित्थमेतेष्वष्टादशपुराणेषु केषांचिल्लोमहर्षणप्रोक्तत्वमेव ।।१ ।। केषां चिदुग्रश्रवःप्रोक्तत्वमेव ।।२ ।। केषांचिदुभयप्रोक्तत्वान्निबन्धद्वैधम्। केषांचित्तूभयानुक्तत्वा-दन्यप्रोक्तत्वमेव ।।३ ।। यत्र निबन्धद्वैधं तत्रान्यतरगणनया अष्टादशसंख्यापूर्तिः क्रियते। यथा लौमहर्षणपाद्मेनौग्रश्रवसः पाद्मेन वा। लौमहर्षणेन देवीभागवतेनौग्रश्रवसेन श्रीमद्भागवतेन

लोमहर्षण का सौतित्व सम्भव होने पर भी एक न्यायविशेष से यहाँ पुराण वाङ्मय में लोमहर्षण तथा उग्रश्रवा का सूत शब्द से ग्रहण किया जाने से सौति शब्द से केवल उग्रश्रवा का ही ग्रहण करना उचित है। वह न्याय यह है कि—

स्पष्ट अर्थ वाले लोक व्याप्त सुप्रसिद्ध पदार्थ स्वतन्त्र हों तो उनमें शास्त्रार्थ होना चाहिये न कि शब्दों में अथवा उनसे सम्बद्ध अन्य उक्तियों में।

ऐसा होने पर पद्मपुराण से कोई विरोध नहीं है क्योंकि उग्रश्रवा के द्वारा प्रोक्त पद्मपुराण में उसका लोमहर्षण के द्वारा भी प्रोक्तता का प्रतिपादन होने के कारण अवश्य लोमहर्षण के द्वारा कहे हुए कुछ पुराणों का भी उत्तरकाल में उग्रश्रवा के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ होने का भी ज्ञान होता है। इस प्रकार इन अठारह पुराणों में कुछ लोमहर्षण के द्वारा प्रोक्त है ।।१ ।। और कुछ उग्रश्रवा के द्वारा प्रोक्त है ।।२ ।। कुछ पुराणों का दोनों के द्वारा प्रोक्त होने के कारण उनके दो निबन्ध ग्रन्थ रूप मिलते हैं। कुछ पुराणों का दोनों के द्वारा ही कथन न होने के कारण उनका अन्यों के द्वारा प्रोक्तत्व स्पष्ट ही है ।।३ ।। जहाँ एक पुराण के दो निबन्ध है वहाँ दोनों में से किसी एक की गणना से अठारह की संख्या की पूर्ति की जाती है जैसे लोमहर्षण के पद्मपुराण से अथवा उग्रश्रवा के पद्म से, लोमहर्षण के देवीभागवत

---

१. मूलग्रन्थे तु ''सुप्रसिद्धपदार्था ये स्वतन्त्रालोकविश्रुषुकर्त्तव्यशब्देषु न तदुक्तिषु'' इति पाठः पठितो यो हि त्रुटिपूर्णोऽतः संशोधितस्शुद्धपाठः मूले स्थापितः। प्रसिद्धपाठस्तु ''अभिव्यक्तपदार्थाये इत्येवरूपे'' वर्तते।

वा। लौमहर्षणेन वायुपुराणेन नौग्रश्रवसेन शिवपुराणेन वा इत्थं ब्रह्मवैवर्त्तादावपि बोध्यम्।

एतेषां चोत्तरोत्तरमनेककर्तृकाणां तस्मैः तत्र तत्र पुराणेतरविषयैः समुपवृंहितरूपत्वेऽपि वस्त्रायुधालङ्काराद्यावृतदेवदत्तशरीरस्य देवदत्तशरीरत्वतत्व न विहन्यते इत्युक्तं प्राक्। यथैकैकस्मिन् व्याकरणे कर्त्रादिभेदाद् ग्रन्थबाहुल्येऽपि व्याकरणाष्टसंख्या न विहन्यते। एवम् एकैकस्मिन् पुराणे कर्त्रादिभेदाद् ग्रन्थबाहुल्यातपुराणाष्टादश-संख्या न विरुध्यते इत्यपि। ब्रह्मादिसूतान्तानामनेकेषां तत्र तत्र प्रवचनकर्तृत्वेनाख्यानात्। सूतप्रवचनेऽपि द्वैविध्यं भवति लोमहर्षणोग्रश्रवसोः सूतयोः कालभेदेन प्रवक्तृत्वात्॥

सृष्टिविद्यायाः प्रकारभेदेनानेकधा दर्शयितुं शक्यत्वान्मन्त्रब्राह्मणेषु निदर्शितानामष्टादशानां सृष्टिकल्पानामनुरोधेन सिद्धाया अष्टादशसंख्यायास्तादृशपुराणविद्यानिष्ठत्वेऽपि तत्तदनेककर्तृकनानानिबन्धपरिच्छेदकत्वाभावात्॥ तस्मात् संभवन्ति शतशः पुराणनिबन्धाः अथाप्यष्टादशैव पुराणानीति सिद्धम्। अत एवोत्तरकालेऽपि कालेकाले तानेवाष्टादशसृष्टि-

---

से अथवा उग्रश्रवा के श्रीमद्भागवत से, लोमहर्षण के वायुपुराण से अथवा उग्रश्रवा के शिवपुराण से। इस प्रकार ब्रह्मवैवर्त आदि में भी जानना चाहिए।

इनके उत्तरोत्तर अनेक कर्त्ता होने पर भी जहाँ-तहाँ पुराण से इतर विषयों के द्वारा परिवर्द्धित होने पर भी इन पुराणों का वस्त्र-शस्त्र अलङ्कार आदि से आवृत देवदत्त के शरीर का देवदत्त शरीरत्व समाप्त नहीं होता वैसे ही पुराणत्व नष्ट नहीं होता है ऐसा पहले कहा जा चुका है। जिस प्रकार एक ही व्याकरण विषय में प्रवक्ता आदि का भेद होने पर ग्रन्थों की बहुलता से व्याकरण की आठ संख्या का विघात नहीं होता है इसी प्रकार एक-एक पुराण में कर्त्ता अवान्तर विषय आदि भेद होने से पुराण की अठारह संख्या का विरोध नहीं होता क्योंकि ब्रह्मा से लेकर सूत तक अनेक प्रवचन कर्त्ताओं के कथन का उल्लेख है। केवल सूत का प्रवचन होने पर भी द्वैविध्य हो जाता है क्योंकि लोमहर्षण और उग्रश्रवा दोनों सूत काल भेद से प्रवक्ता थे।

सृष्टि विद्या के प्रकार भेद से अनेक प्रकार का बतलाना सम्भव होने पर मन्त्र ब्राह्मण में निदर्शित अठारह प्रकार के सृष्टि कल्पों के अनुरोध से सिद्ध अठारह की संख्या होने पर उतने ही पुराणों की संख्या तक सीमित होने पर भी उनके अनेक कर्त्ताओं के सैकड़ों पुराण निबन्ध होने पर भी अठारह पुराण ही है ऐसा सिद्ध है। इसीलिए उत्तरकाल में भी समय-समय पर भी उन्हीं अठारह सृष्टिकल्पों का आलम्बन कर कतिपय पुराण

कल्पानवलम्ब्य कतिपय-पुराणनिबन्धा अन्यैरन्यैर्मुनिभिः संकलितास्तेषामपि तत्तत्कल्पानुगमानुरोधेन पूर्वनिर्दिष्टाष्टादशपुराणान्तःपातित्वं स्मरन्ति ॥ ते यथा देवीभागवते (१।३)॥

तथैवोपपुराणानि शृण्वन्तु ऋषिसत्तमाः।
सनत्कुमारं[१] प्रथमं नारसिंहं[२] ततः परम् ॥१॥

नारदीयं[३] शिवं[४] चैव दौर्वाससमनुत्तमम्[५]।
कापिलं[६] मानवं[७] चैव तथा चौशनसं[८] स्मृतम् ॥२॥

वारुणं[९] कालिकाख्यं[१०] च साम्बं[११] नन्दिकृतं[१२] शुभम्।
सौरं[१३] पाराशरं[१४] प्रोक्तमादित्यं[१५] चातिविस्तरम् ॥३॥

माहेश्वरं[१६] भागवतं[१७] वासिष्ठं[१८] च सविस्तरम्।
एतान्युपपुराणानि कथितानि महात्मभिः ॥४॥ (१३-१६)

निबन्ध अन्य मुनियों के द्वारा भी संकलित किये गए, उनके भी तत-तत् कल्पों के अनुरोध से पूर्व निर्दिष्ट अठारह पुराणों में ही अन्तर्भाव मानते हैं। जैसे देवीभागवत में कहा है—(प्रथम स्कन्ध का तृतीय अध्याय)

हे श्रेष्ठ ऋषियों उपपुराणों का श्रवण कीजिए। सनत्कुमार प्रथम है नारसिंह उसके पश्चात् है ॥१॥

उसके पश्चात् नारदीय, शिव, दौर्वास, कपिल, मानव और औशनस कहे गये हैं ॥२॥

वारुण, कालिका, नन्दिकृत साम्ब, सौर, पराशर प्रोक्त अत्यन्त विस्तृत आदित्य माहेश्वर भागवत और विस्तार युक्त वासिष्ठ, महात्माओं के द्वारा ये उपपुराण कहे गये हैं ॥३-४॥

तथा मात्स्ये त्रिपञ्चाशाध्याये पुराणानुक्रमणिकाख्ये—

उपभेदान् प्रवक्ष्यामि लोके ये सम्प्रतिष्ठिताः।
पाद्मे पुराणे यत्रोक्तं नरसिंहोपवर्णनम्॥१॥

तच्चाष्टादशसाहस्रं नारसिंहमिहोच्यते।
नन्दाया यत्र माहात्म्यं कार्तिकेयेन वर्ण्यते॥२॥

नन्दी पुराणं तल्लोकैराख्यातमिति कीर्त्यते।
यत्र साम्बं पुरस्कृत्य भविष्यति कथानकम्॥३॥

प्रोच्यते तत्पुनर्लोके साम्बमेतन्मुनिव्रताः।
एवमादित्यसंज्ञा च तत्रैव परिगण्यते॥४॥

अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत् प्रदृश्यते।
विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तदेतेभ्यो विनिर्गतम्॥५॥ (५३/५९-६२)

॥ इति ॥

तथा मत्स्यपुराण के तिरेपनवें अध्याय में पुराणों की अनुक्रमणिका में–

ऋषियो! अब मैं उन उपपुराणों का वर्णन कर रहा हूँ, जो लोक में प्रचलित हैं। पद्मपुराण में जहाँ नृसिंहावतार के वृत्तान्त का वर्णन किया गया है॥१॥

उसे नारसिंह (नरसिंह) पुराण कहते हैं उसमें अठारह हजार श्लोक हैं। जिसमें स्वामि कार्तिकेय ने नन्दा के माहात्म्य का वर्णन किया है॥२॥

उसे लोग नन्दीपुराण के नाम से पुकारते हैं। मुनिवरो! जहाँ भविष्य की चर्चा सहित साम्ब का प्रसङ्ग लेकर कथानक वर्णन किया गया है॥३॥

उसे लोक में साम्बपुराण कहते हैं इस प्रकार सूर्य महिमा के प्रसङ्ग में होने से आदित्यपुराण भी कहा जाता है॥४॥

द्विजवरो! उपर्युक्त अठारह पुराणों से पृथक् जो पुराण बतलाये गये हैं, उन्हें इन्हीं से निकला हुआ समझना चाहिए॥५॥ (मत्स्यपुराण ५३/५९-६३)

अथ वेदपुराणादि-शास्त्रावतारे

वेदशाखोत्पत्तिक्रमः

आह मैत्रेयं प्रति भगवान् पराशरः—

आद्यो वेदश्चतुःपादः शतसाहस्रसंमितः।
ततो दशगुणः कृत्स्नो यज्ञोऽयं सर्वकामधुक्॥ (वि.पु. ३.४.१)

अग्निहोत्रं, दर्शपूर्णमासः चातुर्म्मास्यं, पशुः, सोमः इति पञ्चविध एव प्रकृति विकृति-द्वैविध्याद्दशविध इत्येके। गृह्योक्तैः पञ्चयज्ञैः सह दशविधत्वमित्यन्ये।

तमेवमेकं चतुःपादं वेदं कृष्णद्वैपायनो नाम पराशर-पुत्रश्चतुर्द्धा व्यभजत्।

ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्ववेदश्चेति।

वेद पुराणादि शास्त्र के अवतार में वेदशाखाओं की उत्पत्ति का क्रम

मैत्रेय के प्रति भगवान् पाराशर ने कहा—

वेद का आद्यरूप चतुष्पाद तथा एक लाख ऋचाओं का है। उससे दस गुना अधिक यह सम्पूर्ण यज्ञ-वितान है जो सभी कामनाओं का पूरक है।

अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास, पशु तथा सोम यह पाँच प्रकार की यज्ञ विधा प्रकृति तथा विकृति के दो प्रकारों के भेद से दस प्रकार की हो जाती है, ऐसा कतिपय विद्वान् मानते हैं। अन्य यह मानते हैं कि गृह्य सूत्र में कथित पांच यज्ञों के साथ ये अग्निहोत्रादि पाँच मिलकर दस प्रकार के हो जाते हैं।[१] उस एक ही चार पादों वाले यज्ञ वेद को पराशर पुत्र कृष्णद्वैपायन ने चार भागों में विभक्त किया—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के रूपों में।

---

१. वस्तुतः एक एव वेदश्चतुष्पादो विद्यते यज्ञकर्मव्यापृतानामृत्विजांन कर्माणि होत्रमाध्वर्यवमौद्गात्रं ब्रह्मत्वं सम्पादयितुम्। एतादृशा विभागा आदिकालादेवेति विचारमादाय वाक्यमिदं कोष्ठके न्यधायि ग्रन्थकर्त्रैव। पादानां नामानि तदद्यः ऋग्वेद प्रभृत्त नाम चतुष्टयेन दत्तानि।

एक आसीद् यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत्।
चतुर्होत्रमभूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमथाकरोत्॥१॥ ३.४.११

आध्वर्य्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्हौत्रं तथा मुनेः।
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः॥२॥

ततः स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् मुनिः।
यजूंषि च यजुर्वेदं सामवेदं च सामभिः॥३॥

राज्ञां चाथर्ववेदेन सर्वकर्म्माणि च प्रभुः।
कारयामास मैत्रेय ब्रह्मत्वं च यथास्थिति॥४॥

सोऽयमेको यथावेदतरुस्तेन पृथक्कृतः।
चतुर्धाथ ततो जातं वेदपादपकाननम्॥५॥ (३/४/११-१४)

यज्ञार्थं प्रवृत्तः पूर्वमेक एव यजुर्वेदो नाम वेद आसीच्चतुःपादो लक्षमितः। तस्मिन्नेकस्मिन्नेव यथोपयोगमोतप्रोता ऋग्यजुसामात्मका मन्त्रा आसन्। तत्र यज्ञसौकर्य्यार्थं चातु-

---

पुरा एकमात्र यजुर्वेद था, उसको चार भागों में कल्पित किया इस प्रकार वह चार ऋत्विजों के उपयोग वाला हो गया और उससे यज्ञ विधान किया गया॥१॥

हे मुने! यजुर्वेद के द्वारा आध्वर्य्यव, ऋग्वेद के द्वारा हौत्र सामवेद के द्वारा उद्गानृता और अथर्ववेद के द्वारा ब्रह्मत्व की कल्पना की॥२॥

तत्पश्चात् उस मुनि ने ऋचाओं को उद्धृत कर ऋग्वेद को संकलित किया इसी प्रकार यजुओं से यजुर्वेद को तथा सामों से सामवेद को संकलित किया॥३॥

अथर्ववेद से उसने राजाओं के सारे कर्मों को करवाया तथा इसी से यथास्थिति ब्रह्मत्व स्थापित हुआ॥४॥

जिस प्रकार इस एक वेद वृक्ष को वेद व्यास ने पृथक् किया उस रूप से वेद वृक्षों का वन चार प्रकार का हो गया॥५॥

सबसे पहले यज्ञ के लिए प्रवृत्त एक ही यजुर्वेद नामक वेद था जो चार पादों वाला और एक लाख मन्त्रों वाला था। उस एक में उपयोग के अनुसार ऋग्, यजु और साम के मन्त्र ओतप्रोत थे। जो यज्ञ की सुविधा के लिए चार होत्र वाला अर्थात् चार

हौत्रमभूत्। य आध्वर्य्यवं करोति सोऽध्वर्य्युर्नाम, येन पुनस्तदुपयोगिन्य ऋचः प्रयुज्यन्ते स होता, यस्तु साममन्त्रान् प्रयुङ्क्ते स उद्गाता। अथ यः सर्वविद्यो भवति स ब्रह्मा। तदेवं चतुर्णामपि ऋत्विजां प्रयोगसौकर्य्यार्थं प्रत्येकप्रयोज्यमन्त्रान् पृथक् पृथक् पद्धतिरूपेण सङ्कलय्य होत्रोपयुक्तस्य ऋङ्मन्त्रसंग्रहस्य होत्रक्रमनिर्दिष्टस्य ऋग्वेदसंज्ञा—आध्वर्यवोपयुक्तस्य यजुर्म्मन्त्रसंग्रहस्य यजुर्वेदसंज्ञा-औद्गात्रोपयुक्तस्य साममन्त्रसंग्रहस्य तत्क्रमनिर्दिष्टस्य सामवेदसंज्ञा-ब्रह्मकर्म्मोपयुक्तस्य चाङ्गिरोमन्त्रसंग्रहस्य आथर्वणिकक्रमनिर्दिष्टस्य अथर्ववेद संज्ञा न्यरूप्यन्त तदेवमेकस्मिन्नेव कर्त्तव्ये यज्ञे ऋत्विजां भेदात् तत्तत्सौकर्य्योद्देशेन कल्पिताः एकस्यैव वेदस्य चत्वारो भागा इति सिद्धम्। चतुर्ष्वपि चैतेषु भागेषु मन्त्रास्तु त्रिविधा एव। गद्यप्रधाना यजुर्मन्त्रा—पद्यप्रधाना ऋग्मन्त्राः—गीतिप्रधानाश्च साममन्त्राः इति। एवं हि तिस्र एव रचना भवन्तीति रचनाभेदेन सर्वोवेदस्त्रयीशब्देनाभिनीयते। एवञ्च यज्ञऋत्विजश्चत्वारः इति यज्ञक्रियानिबन्धनश्च चातुर्विध्यं वेदस्य सिद्ध्यति।

ऋत्विज वाला हो गया। जो आध्वर्य्यव कर्म करता है वह ऋत्विक् अध्वर्य्यु कहलाता है जिसके द्वारा यज्ञ की उपयोगी ऋचाएँ प्रयुक्त की जाती है वह होता है, जो साम मन्त्रों का प्रयोग करता है वह उद्गाता है और जो सबका ज्ञाता है वह ब्रह्मा है। इस प्रकार चारों ही ऋत्विजों के प्रयोग की सुविधा के लिए प्रत्येक के द्वारा प्रयोज्य मन्त्रों का पृथक् पृथक् पद्धति रूप से संकलन किया गया तथा हौत्र कर्म के उपयोगी अत एव होत्र क्रम में निर्दिष्ट ऋग्वेद के मन्त्र संग्रह का ऋग्वेद नाम हुआ। आध्वर्य्यव कर्म के लिए उपयुक्त यजुर्वेद के मन्त्रों के संग्रह की यजुर्वेद संज्ञा हुई। उदगाता के लिए उपयुक्त, उस कर्म के लिए निर्दिष्ट साम मन्त्र संग्रह की सामवेद संज्ञा हुई। ब्रह्म कर्म के लिए उपयुक्त अङ्गिरा के मन्त्र संग्रह की आथर्वणिक क्रम से निर्दिष्ट होकर अथर्व संज्ञा हुई। इस प्रकार अनुष्ठेय एक ही यज्ञ में ऋत्विजों के भेद से उनकी सुविधा के उद्देश्य से एक ही वेद के चार भाग हैं यह सिद्ध हैं। चारों ही इन भागों में मन्त्र तो तीन प्रकार के ही है—गद्य की प्रधानता वाले यजुर्मन्त्र, पद्य-प्रधान ऋङ्मन्त्र और गीति प्रधान साम मन्त्र। इस प्रकार तीन प्रकार की ही रचना होती है इसलिए रचना भेद से सम्पूर्ण वेद 'त्रयी' शब्द से कहा जाता है। इस प्रकार यज्ञ के ऋत्विज् चार होते हैं इसलिए यज्ञ क्रिया के लिए ग्रन्थबद्धता के कारण वेद का चातुर्विध्य सिद्ध होता है।

अथैवं विभज्य चतुरोभागान् कृष्णद्वैपायनश्चतुर एव शिष्यानेकैकं भागमग्राहयत्। *तथैतस्मादेव वेदात्पुराणेतिहासभागं पृथक् संगृह्य पञ्चमवेदनाम्ना शिष्यमेकमग्राहयत्।* तथाहि—

पैलम्	—	ऋग्वेदश्रावकं चकार
वैशम्पायनम्	—	यजुर्वेदश्रावकं चकार
जैमिनिम्	—	सामवेदश्रावकं चकार
सुमन्तुम्	—	अथर्ववेदश्रावकं चकार
रोमहर्षणन्तु	—	इतिहासपुराणयोश्चकार

ततः पैल ऋग्वेदं द्वाभ्यां संहिताभ्यां विभज्य शिष्यद्वयमग्राहयत्—

१	संहिता	इन्द्रप्रमतये	३
२	संहिता	वाष्कलाय	७

तत्र इन्द्रप्रमतिसंहिता त्रिभिरधीता—इन्द्रप्रमतिपुत्रेण माण्डूकेयेन शाकल्येन वेद-मित्रेण, शाकपूणिना च॥

कृष्ण द्वैपायन ने वेद को इस प्रकार चार भागों में विभक्त कर चारों ही शिष्यों को एक-एक भाग का ग्रहण करवाया। उस प्रकार इसी वेद से पुराणेतिहास भाग का पृथक् संग्रह करके पञ्चम वेद के नाम से एक शिष्य को ग्रहण करा दिया—

पैल को—ऋग्वेद सुनने वाला शिष्य बनाया

वैशम्पायन को—यजुर्वेद सुनने वाला शिष्य बनाया

जैमिनि को—सामवेद सुनने वाला शिष्य बनाया

सुमन्तु को—अथर्ववेद सुनने वाला शिष्य बनाया

रोमहर्षण को—इतिहास पुराण सुनने वाला शिष्य बनाया

तत्पश्चात् पैल ने ऋग्वेद को दो संहिताओं में विभक्त कर दो शिष्यों को ग्रहण करवा दिया—

एक संहिता इन्द्रप्रमति के लिए दी, दूसरी संहिता वाष्कल के लिए। उनमें से इन्द्रप्रमति की संहिता का तीन ने अध्ययन किया—इन्द्र प्रमति के पुत्र माण्डूकेय ने, शाकल्य वेदमित्र ने, तथा शाकपूणि ने।

अथ वेदमित्रः शाकल्य इन्द्रप्रमतिशाखामधीत्य संहितां पञ्चधा विभज्य पञ्चशिष्येभ्यः प्रादात्। ते च—मुद्‌गलः, गोखलः, वात्स्यः, शालीयः, शिशिरः। अथ तृतीयः शाकपूणिस्तु तिस्रः संहिता विभज्य चतुर्थमेकं निरुक्तमप्यकरोत्। तदेवमिन्द्रप्रमतिशाखा आदौ त्रिधा—

१ माण्डूकेयसंहिता १
२ शाकल्यसंहिता ५
३ शाकपूणिसंहिता ३

पुनरत्र माण्डूकेयशाखा एका। शाकल्यशाखा तु पञ्चधाऽभूत्। यथा—

१ मुद्‌गलशाखा।
२ गोखलशाखा।
३ वात्स्यशाखा।
४ शालीयशाखा।
५ शिशिरशाखा।

इसके पश्चात् वेदमित्र शाकल्य ने इन्द्र प्रमति की शाखा का अध्ययन कर उस संहिता को पाँच भागों में विभक्त कर पांच शिष्यों को दिया, वे इस प्रकार हैं—मुद्‌गल, गोखल, वात्स्य, शालीय और शिशिर। तीसरे शिष्य शाकपूणि ने तीन संहिताओं का विभाजन कर चौथे एक निरुक्त की भी रचना की। इस प्रकार इन्द्र प्रमति की शाखा आदि में तीन भागों में थी इस प्रकार शाखाओं में बंटी—

(१) माण्डूकेय संहिता—१ (केवल एक, इसने नये शिष्य नहीं बनाये)
(२) शाकल्य संहिता—५ (पाँच शिष्य)
(३) शाकपूणि संहिता—३ (तीन शिष्य)

इन्द्रप्रमति शिष्यों में माण्डूकेय की शाखा एक ही रही। शाकल्य शाखा पाँच प्रकार की हो गयी जैसे—

१. मुद्‌गल शाखा
२. गोखल शाखा
३. वात्स्य शाखा
४. शालीय शाखा
५. शिशिर शाखा

शाकपूणिसंहिताऽपि पुनस्त्रिविधा जाता। यथा—

१ क्रौञ्चशाखा।

२ वैतालकिशाखा।

३ बलाकशाखा।

अथान्या वाष्कलसंहिता पूर्वं चतुर्द्धा विभक्ता पुनरन्यथा त्रेधा विभक्ता तदेवं सङ्कलय्य सेयं [1]वाष्कलसंहिता सप्तधा समभूत्। यथा—

१ बोध्यसंहिता।

२ अग्निमाठरसंहिता।

३ याज्ञवल्क्यसंहिता।

४ पराशरसंहिता।

१ कालायनिशाखा।

शाकपूणि की शाखा भी पुनः तीन प्रकार की हो गयी जैसे—

१. कौञ्च शाखा

२. वैतालिक शाखा

३. बलाक शाखा

पैल के दूसरे शिष्य जो पैल की दूसरी संहिता है, बाष्कल को दी जाने से वाष्कल संहिता है वह पहले चार भागों में विभक्त की गयी पुनः शाकल्य शिष्य अन्य बाष्कलि की तीन भागों में विभक्त की गयी इस प्रकार संकलन कर वाष्कल संहिता सात प्रकार की हो गयी। जैसे—

१. बोध्य संहिता

२. अग्निमाठर संहिता

३. याज्ञवल्क्य संहिता

४. पराशर संहिता

१. कालायनि शाखा

---

१. एकः पैलशिष्यो बाष्कलः, तस्य संहिताचतुष्टयंबोध्यादि शिष्याध्यापितम्। अपरश्चवाष्कलशाकल्य सब्रह्मचारी तस्य त्रयः शिष्याः कालायनि-गार्ग्य-कथाजप, विष्णुपुराणीय विष्णुचितीयायां आत्मप्रकाश टीकायां चास्य नाम बाष्कलिभारद्वाजः, इन्द्रप्रमति शिष्य-प्रशिष्येषु सत्यश्रियस्तृतीय शिष्यः।

२ गार्ग्यशाखा।

३ कथाजपशाखा।

अथ यजुर्वेद-श्रावकस्य वैशम्पायनस्य बहवः शिष्या अभूवन्। तत्र सर्वप्रधानो ब्रह्मरातपुत्रो भगवान् याज्ञवल्क्य आसीत्। एकदा केनापि कारणेन महामेरौ ऋषीणां समाजोऽभूत तत्रोपस्थानाय मुनिगणैः समयः कृतः—

''ऋषिर्योऽद्य महामेरौ समाजे नागमिष्यति।
तस्य वै सप्तरात्रात्तु ब्रह्महत्या भविष्यति॥''

तमेवंकृतं समयं केनापि कारणेन वैशम्पायन एवैको व्यतिक्रान्तवान्। तेनास्य ब्रह्मवध-शापादचिरादेवासौ पदास्पृष्टमेव स्वस्रीयं बालकमघातयत्। अतस्तत्प्रायश्चित्तार्थं—''मत्कृते ब्रह्महत्यापहं व्रतं चरध्व'' मिति सर्वान् शिष्यानाज्ञापयत्—

''अथाह याज्ञवल्क्यस्तं किमेभिर्भगवन् द्विजैः।
क्लेशितैरल्पतेजोभिश्चरिष्येऽहमिदं व्रतम्॥१॥''

---

२. गार्ग्य शाखा

३. कथाजप शाखा

(ऋग्वेद शाखाएँ पूर्ण)

यजुर्वेद के श्रावक वैशम्पायन के बहुत से शिष्य हुए। उनमें सर्वप्रधान ब्रह्मरात पुत्र भगवान् याज्ञवल्क्य थे। एक बार किसी कारण से महामेरु पर ऋषियों की सभा हुई। वहाँ उपस्थित होने के लिए मुनिगणों ने सिद्धान्त अर्थात् निर्णय कर लिया था—

जो ऋषि आज महामेरु पर्वत पर सभा में नहीं आयेगा उससे सात रात्रि में ब्रह्म हत्या हो जायेगी।

इस प्रकार बनाये गये नियम का किसी कारण से एक मात्र वैशम्पायन ने ही व्यतिक्रमण किया इस कारण से उसको लगे ब्रह्म वध शाप के कारण शीघ्र ही उसने (प्रमाद वश) पैरों से छू लेने वाले बालक भागिनेय (भाणेज) को मार दिया इसलिए प्रायश्चित के लिए ''मेरे लिए ब्रह्महत्या का निवारण करने वाले व्रत का आचरण करो'' ऐसी सभी शिष्यों को आज्ञा दी—

तत्पश्चात् वैशम्पायन ने याज्ञवल्क्य को कहा भगवन् अल्प तेज वाले इन द्विजों को कष्ट देने से क्या लाभ है? मैं इस व्रत का आचरण करूँगा—

तदेतत्परावमानकारि गौरवगर्भितं वचनं श्रुत्वा क्रुद्धो वैशम्पायनो याज्ञवल्क्यं प्रत्याह :–

निस्तेजसो वदस्येतान् यस्त्वं ब्राह्मणपुङ्गवान्।
तेन शिष्येण नार्थोऽस्ति ममाज्ञाभङ्गकारिणा।।
मुच्यतां यत् त्वयाधीतं मत्तो विप्रावमानक।
याज्ञकल्क्यस्ततः प्राह भक्त्यैतत्ते मयोदितम्।।
ममाप्यलं त्वयाधीतं यन्मया तदिदं द्विज।

इत्युक्त्वा रुधिराक्तानि सरूपाणि यजूंषि छर्द्दयित्वा तस्मै दत्वा चासौ मुनिः स्वेच्छया ययौ। अथापरे शिष्या गुरुणाज्ञप्ता याज्ञवल्क्यविसृष्टानि तानि यजूंषि तित्तिरीभूत्वा जगृहुः। तेनैते तैत्तिरीया अभवन्। एवं गुरुप्रेरितैर्यैर्ब्रह्महत्याव्रतं चीर्णं ते चरणादेव निमित्ताच्चरकाध्वर्य्यवोऽभूवन्। एवं तेभ्यः प्रवर्त्तिता सा यजुःसंहिता तैत्तिरीयसंहितानाम्ना प्रसिद्धिमगमत्।

अथ याज्ञवल्क्यस्तु प्राणायामपरायणः प्रयतस्तत आरभ्य यजूंष्यभिलषन् सूर्य्यं तुष्टाव। तुष्टश्च भगवान् सूर्य्यो वाजिरूपधरः कामं व्रियतामिति प्राह। तदा याज्ञवल्क्यः प्रणिपत्य प्रार्थयामास—

दूसरों का अपमान करने वाले गौरव युक्त (अर्थात् बड़प्पन के भाव से भरे) इस वचन को सुनकर क्रुद्ध वैशम्पायन ने याज्ञवल्क्य को कहा—

हे याज्ञवल्क्य जो तुम इन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को निस्तेज कहते हो ऐसे मेरी आज्ञा का भंग करने वाले शिष्य से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। ब्राह्मणों का अपमान करने वाले! तुम्हारे द्वारा मुझसे जो अध्ययन किया गया है वह त्याग दो। तत्पश्चात् याज्ञवल्क्य ने कहा मैंने यह आपके प्रति भक्ति के कारण ही कहा है मुझे भी आप जैसे गुरु से बस अर्थात् कुछ नहीं करना, जो कुछ आपसे मैंने पढ़ा वह यह रहा—

यह कहकर रूधिर से सने हुए वमन द्वारा निकाले यजु मन्त्रों को वहाँ छोड़कर वह मुनि स्वेच्छा से चला गया। उसके पश्चात् अन्य शिष्यों ने गुरु से आज्ञा प्राप्त किये हुए याज्ञवल्क्य के द्वारा छोड़े गए उन यजु मन्त्रों का तीतर पक्षी बनकर ग्रहण किया। इसलिए ये शिष्य तैत्तिरीय हुये। इस प्रकार गुरु के द्वारा प्रेरित जिन ब्राह्मण शिष्यों ने ब्रह्म हत्या के व्रत का अनुष्ठान किया उस अनुष्ठान के आचरण के निमित से ही ये चारकाध्वर्यु हो गये। इस प्रकार उनके द्वारा प्रवर्तित वह यजु संहिता तैत्तिरीयसंहिता के नाम से प्रसिद्ध हुई।

इसके पश्चात् प्राणयामपरायण संकल्पनिरत याज्ञवल्क्य ने उसी समय से यजुओं को चाहते हुए सूर्य को सन्तुष्ट किया। सन्तुष्ट भगवान सूर्य ने अश्व का रूप धारण कर कहा—मनचाहा वर मांगो तब याज्ञवल्क्य ने प्रणाम करके प्रार्थना की—

"यजूंषि तानि मे देहि यानि सन्ति न मे गुरौ"

एवं प्रार्थितो भगवान् सविता अयातयामसंज्ञानि यजूंषि तस्मै ददौ यानि तद्गुरुरपि न वेत्ति। अथ यतः सूर्य्योऽश्वोऽभवत्। तत एव तानि यजूंषि अधीयानाः वाजिनः समाख्याताः। तेषां वाजिनां पञ्चदशशाखाभेदा अभूवन्। याज्ञवल्क्यस्य शिष्यैः कण्वादिभिः पञ्चदशभिः प्रवर्त्तित्वादिति दिक्। तदेवमुभये मिलित्वा सप्तविंशतिर्यजुःशाखाः पराशर-कालपर्य्यन्तमभूवन्। तथाचोक्तं तेन पुराणानां तृतीये विष्णुपुराणे—

यजुर्वेदतरोः शाखाः सप्तविंशन्महामुनिः।
वैशम्पायननामासौ व्यासशिष्यश्चकार वै॥ (वि.पु. ३/५/१)

तदनन्तरन्तु उदीच्य मध्यदेश्यप्राच्यादिभेदेन चरकाध्वर्य्युणां षड्शीतिर्भेदा अभवन्। अतएव पुराणानामष्टादशे ब्रह्माण्डपुराणे सम्भूय एकाधिकशतमध्वर्य्युशाखा उक्ताः।

शतमेकाधिकं ज्ञेयं यजुषाम् ये विकल्पकाः॥

(ब्र.पु. अनु. पा. अ. ३५ श्लो. ३०)

"मुझे उन यजु मन्त्रों को दीजिए जो मेरे गुरु को भी ज्ञात न हों"

इस प्रकार प्रार्थना करने पर भगवान सूर्य ने अयातयाम नामक यजु मन्त्र उसको दिये जिनको उसके गुरु भी नहीं जानते हैं। चूँकि सूर्य अश्व हुआ इसीलिए यजु मन्त्रों का अध्ययन करने वाले 'वाजी' कहे गये उन वाजियों के पन्द्रह शाखा भेद हुए। क्योंकि याज्ञवल्क्य के कण्वादि पन्द्रह शिष्यों के द्वारा प्रवर्तित किये गये थे। इस प्रकार दोनों मिलाकर सत्ताईस यजु शाखाएँ पराशर के काल तक हो गयी जैसा कि उन्होंने पुराणों में तृतीय विष्णु पुराण में कहा—

व्यास के शिष्य वैशम्पायन नामक महामुनि ने यजुर्वेद रूपी वृक्ष की सत्ताईस शाखाएँ फैलायी। (विष्णु पुराण तृतीय अंश ५/१)

उसके अनन्तर उत्तर देश से सम्बन्धित, मध्य देश से सम्बन्धित तथा प्राची (पूर्व) देशों से सम्बन्धित चरकाध्वर्युओं के भी छियासी भेद हो गए। इसलिए पुराणों में अठारहवें ब्रह्माण्ड पुराण में कुल मिलाकर एक सौ एक अध्वर्यु शाखाएँ कही गयी है—

"यजु मन्त्रों के जो भेद हैं वे एक सौ एक जानने चाहिए" (ब्र.पु. अनु. पाद. अ. ३५ श्लोक ३०)

अथ सामवेदश्रावको भगवान् जैमिनिरादौ तां संहितां द्वेधाकृतां क्रमेणैकैकां स्वपुत्राय सुमन्तवे स्वपौत्राय सुत्वने चाध्यापयामास। ततः सुत्वनःपुत्र सुकर्मा साहस्रं संहिताभेदं चकार। तमेतं संहिताभेदं तस्य सुकर्म्मणः शिष्यौ जगृहाते। एकः कौशल्यो हिरण्यनाभः, अपरः पौष्पिञ्जिश्च। तस्यैतस्य हिरण्यनाभस्य पञ्चशतशिष्याः पञ्चशतसंहिता अधीयाना उदीच्यसामगा उच्यन्ते। एवमन्ये तस्यैव पञ्चशतशिष्याः अन्यपञ्चशतसंहिताध्यायिनः प्राच्यसामगा उच्यन्ते। तत्रापि हिरण्यनाभस्योदीच्यसामगेषु पञ्चशतशिष्येषु मध्ये कश्चन कृतनामा शिष्यः स्वशिष्येभ्यश्चतुर्विंशतिसंहिताः कृत्वा प्रोवाच। तैश्चाप्यसौ सामवेदः शाखाभिर्बहुलीकृतः॥

अथापरः पौष्पिञ्जिरेतां संहितां चतुर्द्धाकृत्वा चतुरः शिष्यान् प्रत्येकमग्राहयत्। ते च यथा—लौकाक्षिः, कुथुमिः, कुसीदी, लाङ्गली च। अथ तच्छिष्य-प्रशिष्यादिभिरप्यसौ सामवेदः शाखाभिर्बहुलीकृतः।

अतः परमथर्ववेदश्रावकः सुमन्तुः कबन्धं नाम शिष्यमध्यापयामास। स च कबन्धस्तां संहितां द्विधाकृत्वा देवदर्शाय पृथ्याय च ग्राहयामास। तत्र देवदर्शः स्वसंहितां चतुर्धा कृत्वा

इसके पश्चात् सामवेद के श्रावक भगवान् जैमिनि ने आदि में उस संहिता को दो भागों में विभक्त कर क्रमशः एक-एक अपने पुत्र सुमन्तु तथा अपने पौत्र सुत्वा को अध्यापन किया। उसके पश्चात् सुत्वा के पुत्र सुकर्मा ने एक हजार संहिता भेद कर दिए। उस संहिता भेद का सुकर्मा के दो शिष्यों ने ग्रहण किया एक कौशल्य हिरण्यनाभ और दूसरा पौष्पिञ्जि। उस हिरण्यनाभ के पाँच सौ शिष्य पाँच सौ संहिताओं का अध्ययन करते हुए प्रसिद्धि प्राप्त कर उदीच्य सामवेद कहे गये हैं। इस प्रकार उसी के अन्य पाँच सौ शिष्य पाँच सौ संहिताओं का अध्ययन कर 'प्राच्य सामवेद' कहे गये उनमें भी हिरण्यनाभ के उदीच्य सामवेद के पचास शिष्यों में से किसी कृत नामक शिष्य ने अपने शिष्यों के लिए चौबीस संहिताएँ करके पटाई। उनके द्वारा ही वह सामवेद अधिक शाखाओं वाला कर दिया गया।

इसके पश्चात् दूसरे पौष्पिञ्जि नामक शिष्य ने इस संहिता को चार भागों में विभाजित कर चार शिष्यों में प्रत्येक के एक-एक संहिता का अध्यापन करवाया वे इस प्रकार हैं—लोकाक्षि, कुथुमि, कुसीदी तथा लाङ्गली। उनके शिष्यों प्रशिष्यों के द्वारा भी सामवेद की अनेक शाखाएँ फैला दी गयी।

इसके पश्चात् अथर्ववेद के श्रावक सुमन्तु ने कबन्ध नामक शिष्य को अध्यापन कराया। उस कबन्ध ने उस संहिता को दो भागों में विभक्त कर देवदर्श तथा पथ्य को

चतुरः शिष्यान् पाठयामास। ते यथा—मोदः, ब्रह्मवलिः, शौल्कायनिः, पिप्पलादः इति।। पथ्यस्यापि त्रयः शिष्याः संहिताकर्त्तारः। जाजलिः, कुमुदः, शौनकश्चेति। अथ शौनकः पुनरेतां द्विधा कृत्वा बभ्रवे सैन्धवायनाय च प्रादात्। तेन शौनकसंहिताध्येतारो द्विधा विभक्ता अभूवंन्। सैन्धवा मुञ्जकेशाश्च (मुञ्जकेश इति बभ्रोरेव नामान्तरम्[१]) तत्रैतासु आथर्वणिक-संहितासु पञ्चैव संहिताविकल्पाः श्रेष्ठा भवन्ति नक्षत्रकल्पः, वेदकल्पः संहिताकल्पः, आङ्गिरसंकल्पः, शान्तिकल्पः इति भेदात्।

१ तत्र नक्षत्रकल्पे नक्षत्रादिपूजाविधयः।
२ वेदकल्पे वैतानिकब्रह्मत्वादिविधिः।
३ संहिताकल्पे संहिताविधिः।
४ आङ्गिरसकल्पेऽभिचारादिविधयः।
५ शान्तिकल्पे अश्वगजाद्यष्टादशमहाशान्त्यादिविधिः।

।। इति वेदशाखोत्पत्तिक्रमः ।।

अध्यापनपूर्वक ग्रहण करवाया। उनमें देवदर्श ने अपनी संहिता को चार भागों में विभक्त कर चार शिष्यों को पढ़ाया वे इस प्रकार हैं—मोद, ब्रह्मवलि, शौल्कायनि और पिप्पलाद। पथ्य के भी तीन शिष्य जाजलि, कुमुद और शौनक थे जो संहिताओं के कर्त्ता हुए। शौनक ने पुनः इस संहिता को दो भागों में विभक्त कर बभ्रु और सैन्धवायन को दिया। इस कारण से शौनक संहिता के अध्ययन करने वाले दो भागों में विभक्त हो गए—सैन्धव और मुञ्जकेश (मुञ्जकेश बभ्रु का ही अन्य नाम है) उन अथर्ववेद सम्बन्धी संहिताओं में वहाँ पाँच संहिता विकल्प ही श्रेष्ठ हैं—नक्षत्र कल्प, वेदकल्प, संहिताकल्प, अङ्गिरसकल्प और शान्तिकल्प रूपों से—

१. उनमें नक्षत्रकल्प में नक्षत्रादि पूजा की विधियाँ हैं।
२. वेदकल्प में यज्ञवेदी सम्बन्धी और ब्रह्मा सम्बन्धी विधियाँ हैं।
३. संहिताकल्प में संहिताविधि है।
४. अङ्गिरसकल्प में अभिचार आदि की विधियाँ हैं।
५. शान्तिकल्प में अश्व गजादि अठारह महाशन्ति आदि से सम्बन्धी विधियाँ हैं।

।। यह वेद की शाखाओं की उत्पत्ति का क्रम पूर्ण है ।।

---

१. वायौ सैन्धवायनशिष्यो मुञ्जकेशः इति, तथाहि :—
सैन्धवो मुञ्जकेशाय भिन्ना सा च द्विधा पुनः। पूर्वार्ध ६१/५४

अथ पुराणावतारः

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः॥१॥ वि.पु. ३/६/१५

एतामेकां पुराणसंहितां कृत्वा भगवान् कृष्णद्वैपायनः सूताय निजशिष्याय रोमहर्षणाय ग्राहयामास। तस्य पुनः सूतस्यापरे षट्शिष्या अभवन्। सुमतिः[१], अग्निवर्चाः[२], मित्रयुः[३], शांशपायनः[४], अकृतव्रणः[५], सावर्णिः[६] इतिभेदात्। अत्राकृतव्रणः काश्यपनाम्नापिव्यवह्रियते। तत्रैतेषु षट्सु शिष्येषु काश्यपः सावर्णिः शांशपायन इत्येते त्रयः संहिताकर्त्तारोऽभूवन्। तिसृणां चैतासां काश्यपसंहिता-सावर्णिसंहिता-शांशपायनसंहितानां मूलभूता रौमहर्षणिका सूत-संहिताऽऽसीत्। तदेवं संहिताचतुष्टयी सिद्धा।

काश्यपः संहिताकर्त्ता सावर्णिः शांशपायनः।
रोमहर्षणिका चान्या तिसृणां मूलसंहिता॥१॥ (वि.पु. ३/६/१८)

अब पुराण का अवतरण

पुराणतत्त्व के रहस्यविद् महर्षि वेद व्यास ने आख्यानों, उपाख्यानों, गाथाओं और कल्पशुद्धिओं के द्वारा पुराण संहिता का निर्माण किया॥१॥ (विष्णुपुराण ३/६/१५)

भगवान् कृष्णद्वैपयान ने एक पुराण संहिता का निर्माण कर अपने शिष्य सूत रोमहर्षण को ग्रहण करवाया अर्थात् पढ़ाया। और फिर उस सूत के अन्य छः शिष्य हुए—सुमति, अग्निवर्चा, मित्रयु, शांशपायन, अकृतव्रण और सावर्णि नाम के। यहाँ अकृतव्रण काश्यप नाम से भी व्यवहृत किया गया है। इन छः शिष्यों में काश्यप, सावर्णि और शांशपायन ये तीन पुराणसंहिता के कर्त्ता हुए। काश्यप संहिता, सावर्णि संहिता तथा शांशपायन संहिता इन तीनों संहिताओं की मूलभूत 'रोमहर्षणिका सूत संहिता' थी। इस प्रकार चार संहिताएँ सिद्ध होती हैं।

काश्यप, सावर्णि और शांशपायन ये पुराण संहिता के कर्त्ता हुए और इन तीनों की मूल संहिता रोमहर्षणिका एक और अन्य थी॥१॥

एता एव चतस्रः संहिता अवलम्ब्य सर्वपुराणानामाद्यं ब्रह्मपुराणमुच्यते—इत्याह मैत्रेयं प्रति भगवान् पराशरः—

चतुष्टयेनभेदेन[1] संहितानामिदं मुने।

आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते॥२॥ (वि.पु. ३/६/१९)

ब्रह्मपुराणस्य सर्वपुराणादिभूतत्वं प्रतिपादयता भगवता पराशरेण ब्राह्मपुराणातिरिक्त-पुराणानां तदुत्तरभावित्त्वमुक्तप्रायम्। ब्राह्मपुराणस्य संहिताचतुष्टयमूलकत्वं प्रतिपादयता च सर्वेषामेव ब्रह्मपुराणादिपुराणानां तादृशसंहिताचतुष्टयमूलकत्वमपि निगदितप्रायमेव। एवमेव सूतसंहितादि-संहिताचतुष्टय्या मूलभूता वेदव्यासप्रणीता पुराणसंहितैवेति वेदव्यासस्यैव सर्वपुराणमूलप्रवर्तकतामभिप्रयद्भिरुद्धोष्यते—

"अष्टादश पुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः" इति[2]।

वस्तुतस्तु तेषामष्टादशानामपि कथाप्रसङ्ग-प्रबन्धप्रस्तावका भिन्नकाला भिन्नोद्देश्या

इन्हीं चार संहिताओं का आधार लेकर निर्मित सब पुराणों में ब्रह्मपुराण प्रथम कहा जाता है ऐसा भगवान् पराशर मैत्रय को कहते हैं—

हे मुने! इन चार पुराण संहिताओं की समष्टि से रचित सब पुराणों में प्रथम पुराण यह ब्रह्मपुराण कहा जाता है।

ब्रह्मपुराण का सब पुराणों में आदिभूत होने का प्रतिपादन करते हुए भगवान् पराशर के द्वारा ब्रह्मपुराण से अतिरिक्त सब पुराणों का उससे उत्तरवर्ती होना भी प्रायः कह ही दिया। ब्रह्मपुराण के इस संहिताचतुष्ट्य मूलक होने का प्रतिपादन करते हुए ब्रह्मपुराण आदि सभी पुराणों का इस प्रकार संहिताचतुष्ट्य मूलक होने का कथन भी प्राय कर दिया है। इस प्रकार सूत संहिता आदि चारों संहिताओं की मूलभूत वेदव्यास प्रणीत संहिता ही है, अतः वेद व्यास की ही समस्त पुराण संहिताओं का मूल प्रवर्तकता के अभिप्राय से यह उद्घोषित किया जाता है—

"अठारह पुराणों के कर्त्ता सत्यवती सुत वेदव्यास हैं।"

वास्तविकता तो यह है कि उन अठारह ही पुराणों के भी कथा प्रसङ्गानुसार ग्रन्थों को प्रस्तुत करने वाले भिन्न-भिन्न काल के भिन्न उद्देश्य वाले भिन्न-भिन्न ही मुनि हुए हैं,

---

१. 'चतुष्टयेनाप्येतेन' इति मूलपाठ आसीत् सोऽत्र परिवर्तितः, विष्णुपुराण ३/६/१८ पाठ मनुसृत्य। तत्र विष्णुचित्तीय—आत्मप्रकाश—व्याख्ययोरप्ययमेव पाठः, इति नात्रकश्चनपाठभेदः।

२. अष्टादश पुराणानां वक्ता सत्यवतीसुतः। स्कन्द पु. रेवा खण्ड १/१३
अष्टादशपुराणनि कृत्वा सत्यवतीसुतः। मत्स्य पु. ५३/७०, देवीभागवत १.३.२४

भिन्नाभिन्ना एव मुनयः। यथा विष्णुपुराणस्य भगवान् पराशरः। पश्चात्तेषां सर्वेषामेव कथानकानां लिपिकर्त्ता तु लोमहर्षणपुत्रः पुराणवृत्तिः सूत उग्रश्रवा एक एवेति पुराणलेखस्वारस्येन स्पष्टं प्रतिभाति। किन्तु यान्येतानि वेदव्यासप्रणीत-पुराणसंहिता-मूलकसंहिता-चतुष्टयी-मूलकानि ब्राह्मादीन्यष्टादशपुराणानि तेषां वेदव्यास प्रमाण्यादेव प्रामाण्यम्। आप्तप्रामाण्याद्धि तद्वचन प्रामाण्यमिति न्यायादतो नैतेष्वष्टादशसु तत्तत्कर्तॄणां तत्तत्कर्तृत्वोपचारः। येषां पुनरन्येषां वेदव्यासप्रणीतपुराणसंहितामनवलम्ब्यैव स्वस्वतपोबलदृष्टकथाप्रस्तावकतत्तन्मुनिप्रामाण्यदेव प्रामाण्यं तान्युपपुराणानि भवन्ति। अत एव नारदपुराणद्वयमध्ये नारदप्रवर्त्तकत्वाविशेषेऽपि यत्र वेदव्यास प्रामाण्यात्प्रामाण्यं तदष्टादशपुराणान्तर्गतम्। यत्र तु नारद प्रामाण्यादेव प्रामाण्यं तदुपपुराणमिति वदन्ति। वेदव्यासस्य चेश्वरावतारत्वाभिप्रायेणोपपुराणापेक्षया पुराणेषु श्रद्धातिशयो भवति भारतवर्षीयार्य्याणाम्। तत्र यद्यपि वेदव्यासप्रणीतपुराणसंहितायां वेदोद्धृतायाम् आख्यानोपाख्यानगाथाकल्पशुद्ध्यात्मकानि चत्वार्य्येव लक्षणानि तथापि तान्यन्यथावर्णकेन

जैसे विष्णु पुराण के भगवान् पराशर हैं। पश्चात् उन सभी कथानकों अर्थात् आख्यानों के लिपिकर्त्ता तो लोमहर्षण के पुत्र, पुराणवृत्ति वाले सूत अकेले उग्रश्रवा है। ऐसा पुराणों के लेख के स्वारस्य से स्पष्ट प्रतीत होता है। किन्तु जो भी ये वेद व्यास रचित पुराण संहिता मूल वाली चार संहिताओं के मूल वाले ब्राह्मादि अठारह पुराण हैं उनका वेद व्यास के प्रामाण्य से ही प्रामाण्य है। आप्त प्रामाण्य से ही शास्त्रों के वचन का प्रामाण्य होता है इस न्याय से इन अठारह पुराणों में तत् तत् कर्त्ताओं के तत् तत् पुराण के कर्तृत्व का उपचार नहीं किया जाता है। इनमें भिन्न अन्यों का जो वेद व्यास द्वारा प्रणीत पुराण संहिता का सहारा लिए बिना ही अपने-अपने तपोबल से दृष्ट कथाओं के प्रस्तावक मुनियों के रहे हैं उन-उन मुनियों के प्रामाण्य से ही प्रामाण्य है, वे सब उप पुराण हैं। इसीलिए दो नारद पुराणों के बीच में नारद का प्रवर्त्तकत्व समान रूप से होने पर भी जहाँ वेद व्यास के प्रामाण्य से प्रामाण्य होता है वह अठारह पुराणों के अन्तर्गत आता है जहाँ नारद के प्रामाण्य से ही प्रामाण्य है वह उपपुराण के अन्तर्गत आता है। वेद व्यास के ईश्वर का अवतार होने के भाव से उपपुराणों की अपेक्षा पुराणों में भारतवर्षीय आर्यों की श्रद्धा अधिक होती है। उनमें यद्यपि वेद व्यास द्वारा रचित वेदों के मन्त्रों से उद्धृत पुराण संहिता में आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि ये चार ही लक्षण हैं तथापि उनका

विभज्य ब्राह्मादिपुराणेषु तत्तन्मुनिभिः पञ्चधार्थाः प्रतिपादिता इति तानि सर्वाण्यपि पञ्च-लक्षणान्यभूवन्। तद्यथा—

''सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।
वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥''

तानि चैतानि पञ्चलक्षणानि पुराणसंहितासमुद्धृतानि पुराणान्यष्टादश भवन्तीत्यत्र न केषाञ्चिदपि विप्रतिपत्तिः। तथा चोक्तं पराशरादिभिः—

''अष्टादशपुराणानि पुराणज्ञाः प्रचक्षते इति॥'' (वि.पु. ३/६/२०)

तानि यथा विष्णुपुराणे—

१	ब्राह्मम्।	२	पाद्मम्।	३	वैष्णवम्।
४	शैवम् (वायव्यम्)।	५	भागवतम्।	६	नारदीयम्।
७	मार्कण्डेयम्।	८	आग्नेयम्।	९	भविष्यम्।
१०	ब्रह्मवैवर्त्तम्।	११	लैङ्गम्।	१२	वाराहम्।
१३	स्कान्दम्।	१४	वामनम्।	१५	कौर्म्मम्।
१६	मात्स्यम्।	१७	गारुडम्।	१८	ब्रह्माण्डम्।

(३/६/२१-२३)

अन्यथा विभाजन कर ब्राह्म आदि पुराणों में उन-उन मुनियों के द्वारा पाँच प्रकार के अर्थ प्रतिपादित किये गए हैं इस प्रकार वे सभी (पुराण) पञ्चलक्षण वाले हो गए जो ये हैं—

''सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंश्यानुचरित इस प्रकार पुराण पञ्चलक्षण है।'' (देवी भागवत १/२/१८)

पुराण संहिताओं से समुद्धृत इन पाँच लक्षणों वाले पुराण अठारह हैं इस विषय में किसी की विप्रतिपति नहीं है जैसाकि पराशर आदि के द्वारा कहा गया है—

''पुराणों के ज्ञाता अठारह पुराण कहते हैं''

वे विष्णु पुराण में इस प्रकार परिगणित हैं—

१	ब्राह्म पुराण।	२	पाद्म पुराण।	३	वैष्णव पुराण।
४	शैव पुराण (वायव्यम्)।	५	भागवत पुराण।	६	नारदीय पुराण।
७	मार्कण्डेय पुराण।	८	आग्नेय पुराण।	९	भविष्यपुराण ।
१०	ब्रह्मवैवर्त्त पुराण।	११	लैङ्ग पुराण।	१२	वाराह पुराण।
१३	स्कान्द पुराण।	१४	वामन पुराण।	१५	कूर्म पुराण।
१६	मात्स्य पुराण।	१७	गारुड पुराण।	१८	ब्रह्माण्ड पुराण।

३/९/२१-२३

अत्र शैवस्य वायव्येन सह पुराणमतभेदात् पुराणत्वोपपुराणत्वाभ्यां विकल्पः। एतान्येव स्मरणार्थमन्यथा क्रमकल्पितानि।

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टम्।
अनापकूस्कलिङ्गानि पुराणानि प्रचक्षते ।।इति[1]।

मद्वयं	भद्वयं	ब्रत्रयं	वचतुष्टयम्	अ.	ना.	प.	कू.	स्क.	लिं.	ग.।
७,	५,	१,	३,	८,	६,	२,	१५,	१३,	११,	१७
१६	९	१०	१२							
		१८	१४							
			४ (मतभेदेन)							

कूर्म्मपुराणे तु भविष्यस्य षष्ठत्वं वायुपुराणस्य चाष्टादशत्वमुक्तं, ब्रह्माण्डपुराणंतु तत्र नोल्लिखितम्।।

।। इति संक्षिप्तपुराणावतारः ।।

यहाँ शैव का वायव्य के साथ पुराण विषयक मतभेद होने के कारण पुराण और उपपुराण के रूप में विकल्प है। इन्हीं पुराणों के स्मरण के लिए अन्य प्रकार से यह क्रम कल्पित है—

मकारादि दो नाम (मत्स्य, मार्कण्डेय), भकारादि दो नाम (२ भागवत, १ भविष्योत्तर) ब्र आदि तीन नाम (ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड) वकारादि चार नाम (४ विष्णु, ३ वायु, २ वामन, १ वराह) और अ (अग्नि) ना (नारद), प (पद्म) कू (कूर्म) स्क (स्कन्द) लि (लिङ्ग) ग (गरुड) इस प्रकार अठारह पुराण कहे गये हैं।

(देवी भागवत १/३/२)

मद्वय	भद्वय	ब्रत्रय	वचतुष्टय	अ.	ना.	प.	कू.	स्क.	लिं.	ग.।
७,	५,	१,	३,	८,	६,	२,	१५,	१३,	११,	१७
१६	९	१०	१२							
		१८	१४							
			४ (मतभेद)							

कूर्म पुराण में तो भविष्य को छठा तथा वायु पुराण को अठारहवाँ कहा गया परन्तु ब्रह्माण्ड पुराण में तो इसका उल्लेख नहीं है।

।। इस प्रकार संक्षिप्त पुराणों का उद्‌भव कथन पूर्ण ।।

---

१. देवीभागवते-उत्तरार्धम्—अ-ना-प-लिं-ग-कू-स्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्। १-३.२

अथ प्रकारान्तरेण पुराणावतारः[1]

कृष्णद्वैपायनः पुरा एकामेव पुराणसंहिताम् "आख्यानोपाख्यानगाथा-कल्पशुद्धि-रूप-विषय-चतुष्टयोपेतामनिर्दिष्टनाम्नीमकरोत्—लोमहर्षणाय सूतवंश्याय वेदाधिकाररहिताय स्वशिष्याय पाठयामास च।

ततो लोमहर्षणोऽपि त्रय्यारुण्यादिभ्यः षड्भ्यः शिष्येभ्यः पाठयामास। अपरामेकां लौमहर्षणिकानाम्नीं संहितां चकार च॥ ततस्तेषुषट्सु शिष्येषु मध्ये त्रयः शिष्याः शांशपायनः सावर्णिः काश्यपा अपि प्रत्येकमेकैकां संहितामकुर्वन्। अपाठयंश्च हि स्वशिष्येभ्यः।

पुराणों के उद्‌भव का कथन अन्य प्रकार से

प्राचीनकाल में कृष्णद्वैपयान ने एक ही पुराणसंहिता, आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि रूप चार विषयों से युक्त, नामकरण के बिना बनायी और वेदाधिकार से रहित, सूतवंशज लोमहर्षण नामक अपने शिष्य को उसे पढ़ाया।

उसके पश्चात् लोमहर्षण ने भी त्रयारुणि आदि छः शिष्यों को पढ़ाया और एक अन्य लौमहर्षणिका नामक संहिता का निर्माण किया। उसके पश्चात् उन छः शिष्यों के बीच शांशपायन, सावर्णि, काश्यप इन तीन शिष्यों ने भी प्रत्येक ने एक-एक संहिता का निर्माण किया और अपने शिष्यों को पढ़ाया।

---

१. श्रीमद्‌भागवत प्रसिद्धा प्रकारान्तरपुराणावतरणमिमनिद्भिरिवन्यवशि श्रीमद्भिरोझा महोदयैः, भागवतकृतम् प्रतिपादनमिदं सर्वथैव दोषपूर्णम्।

''प्रथमं व्यासः षट् संहिताः कृत्वा'' इति श्रीधरोक्तं वेदव्यासस्य षट्संहिताकर्तृत्वं तु स्वव्याख्येयश्लोकतात्पर्य्यार्थापरिज्ञानमूलकम्। अष्टादशस्वपि पुराणेषु कुत्रापि षट् संख्याया अनुपलब्धेस्तस्याप्रमाणत्वात्। षड्भ्यः शिष्येभ्यः एकैकामिति पदान्वयभ्रममूलकत्वाच्च। वस्तुतस्तु एतेषां शिष्योऽहं एकैकां कृत्वा सर्वाः समधीतवानित्यर्थः—यद्वा एकैकां संहितामुद्दिश्य एतेषां षण्णां शिष्योऽहं सर्वाः समधीतवानित्यर्थः सङ्गमनीयः।

उग्रश्रवास्तु-अकृतव्रण-सावर्णि-काश्यपैः सह मूलसंहितां लौमहर्षणिकां लोमहर्षणात् स्वपितुरेवाधीतवान्—ततोऽकृतव्रणादिभिः कृताः संहिताः तिस्रः षड्वा अकृतव्रणादिभ्यः एव प्रत्येकमधीतवान्।

यदितु श्रीधरोक्तरीत्याव्यासप्रणीताः षण्मूलसंहिताः स्युः ताश्च प्रत्येकमेकैकां त्रय्यारुण्यादयः षडपि मुनयोऽधीतवन्तः स्युः। तेभ्यः एव च षड्भ्यो मुनिभ्यः एकैकामुग्रश्रवास्ता मूलसंहिताः पठेत्। तर्हि उपरिनिर्दिष्ट-भागवतस्थ-षष्ठश्लोको विरुद्ध्येत्। तस्मादत्र श्रीधरोक्तमशुद्धम्। इदं तु बोध्यम्-एतस्मिन्नुपरिनिर्दिष्ट-भागवतोक्त षष्ठश्लोके ''चतस्रोमूल-

---

''व्यास ने पहले छः संहिताओं का निर्माण कर'' ऐसा श्रीधर का कथन वेद व्यास के छः संहिताओं के कर्तृत्व को बताने वाला स्वयं द्वारा व्याख्येय श्लोकों के तात्पय्यार्थ के अज्ञान के कारण है। क्योंकि अठारह ही पुराणों में कहीं भी छः संख्या की संहिताओं के निर्माण की उपलब्धि न होने से वह प्रमाण नहीं है साथ ही छः शिष्यों को एक-एक कर पढ़ाया ऐसा पदान्वय भी भ्रममूलक है। वास्तव में तो इनके शिष्य मैंने एक-एक करके सब संहिताओं का अध्ययन किया यह अर्थ है अथवा एक-एक संहिता को लक्ष्य बना कर इन छः के शिष्य मैंने समस्त पुराण संहिताओं का अध्ययन किया यह अर्थ सङ्गतीकरण करने योग्य है।

उग्रश्रवा ने अकृतव्रण सावर्णि और काश्यप के साथ अपने पिता लोमहर्षण द्वारा रचित मूलसंहिता का उनसे ही अध्ययन किया, पश्चात् अकृतव्रण आदि के द्वारा रचित तीन अथवा छः संहिताओं को अकृतव्रण आदि से पढ़ा।

यदि श्रीधर के कथन की रीति से व्यास द्वारा रचित छः मूल संहिताएँ ही हो और उनसे ही प्रत्येक का त्रय्यारुणि आदि छः मुनियों ने अध्ययन किया हो और पुनः उन छः मुनियों से ही एक-एक का उग्रश्रवा ने उन मूल संहिताओं का अध्ययन किया हो तो यह भागवत में विद्यमान उपर्युक्त छठे श्लोक के विरोध में जाता है। इसलिए यहाँ पर श्रीधर

संहिताः'' इति बहुवचनदर्शनात् व्यासकृता लोमहर्षणकृता वा संहिता अनेका नत्वेकैका इति तावत्प्रतीयते। अन्यथा ''मूलसंहिताम्'' इति मूलसंहिते इति वा वदेत्। परन्तु संख्या-नियमः कर्तुमशक्य एव। विष्णुपुराणादिरीत्या तु एकैव संहिता व्यासकृता एकैव च लोम-हर्षणकृता इति स्पष्टं प्रतीयते। अत्रत्यं तत्वं पुराणान्तरवचनान्वेषणया निश्चिन्वन्तु विपश्चितः।

व्यासकृता पुराणसंहिता चतुर्ल्लक्षणोपेता—आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैरित्युक्तेः। लोम-हर्षणकृता मूलसंहिता तु पञ्चलक्षणोपेता—

''सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।
वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्''॥ इत्युक्तेः।

त्रय्यारुण्यादिकृताः षट्संहितास्तु पञ्चलक्षणोपेता व्यभिचरितलक्षणाश्च। परास्त्वि-दानीन्तनाः पुराणसंहिता **दशलक्षणोपेताः पञ्चलक्षणोपेता** अनियतलक्षणावा।

का कथन अशुद्ध है। यह ज्ञातव्य है इस उपर्युक्त, भागवत में कथित छठे, श्लोक में चार मूल संहिताएँ इस प्रकार बहुवचन का प्रयोग होने से यह प्रतीत होता है कि व्यास द्वारा रचित अथवा लोमहर्षण द्वारा रचित संहिताएँ अनेक हैं न कि एक-एक। अन्यथा एक वचन का पद 'मूल संहिता' अथवा द्वि वचन का पद 'मूल संहिते' जैसा होना चाहिये था यह कहना चाहिए। परन्तु संख्या का नियम करना असम्भव ही है। विष्णु पुराण आदि की रीति से तो एक ही संहिता व्यास द्वारा रचित है और एक ही संहिता लोमहर्षण के द्वारा रचित है यह स्पष्ट प्रतीत होता है। यहाँ के इस विषय के तत्त्व का विद्वान् लोग अन्य पुराणों के वचनों के अन्वेषण के द्वारा निश्चित करें।[1]

व्यास द्वारा रचित पुराण संहिता 'आख्यान और उपाख्यान जैसे चार लक्षणों से युक्त है जो 'आख्यानैश्चाप्युपाख्यानै.' जैसी उक्ति से ज्ञात है। लोमहर्षण द्वारा रचित मूल संहिता पाँच लक्षणों से युक्त हैं जो सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंश्यानुचरित इस उक्ति से। यह 'सर्गश्च प्रति.' जैसी लक्षणोक्ति से स्पष्ट है।

त्रय्यारुणि आदि रचित छः संहिताएँ तो पाँच लक्षणों से युक्त है और व्यभिचार लक्षण वाली भी है। अन्य आधुनिक पुराण संहिताएँ दश लक्षणों से युक्त, पाँच लक्षणों से युक्त हैं तथा अनियत लक्षणों वाली हैं।

---

१. यह विचार सम्पादकीय में किया गया है।

"दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः।
केचित् पञ्चविधं ब्रह्मन् महदल्पव्यवस्थया॥१॥"

(भा. १२ स्क. ७ अ. ९ श्लोक)

दश लक्षणानि तु भागवतद्वादशस्कन्धे सप्तमाध्याये तथा ब्रह्मवैवर्ते कृष्णजन्मखण्डे १३२ अध्याये द्रष्टव्यानि।

मदन्वये च ये सूताः सम्भूता वेदवर्जिताः।
तेषां पुराणवक्तृत्वं वृत्तिरासीदजाज्ञया॥१॥

(कू.पु. १२ अ. २८ श्लो. ३९)

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः॥१॥ वि.पु. ३.६.१५
प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत सूतो वै लोमहर्षणः।
पुराण संहितां तस्मै ददौ व्यासो महामुनिः॥२॥ ३.६.१६
सुमतिश्चाग्निवर्चाश्च मित्रयुः शांशपायनः।
अकृतव्रणोऽथ सावर्णिः षट्शिष्यास्तस्य चाभवन्॥३॥ ३.६.१७

हे ब्रह्मन्! महत् और अल्प की व्यवस्था से पुराणविद् पुराण को दश लक्षणों से युक्त मानते हैं. कुछ पुराणविद् पाँच प्रकार के लक्षणों से युक्त मानते हैं। (भा. १२ स्क. ७ अ. ९ श्लोक)

दश लक्षण तो भागवत के द्वादश स्कन्ध के सातवें अध्याय में तथा ब्रह्मवैवर्त में कृष्णजन्म खण्ड में एक सौ बत्तीसवें अध्याय में ज्ञातव्य है।

मेरे वंश में वेद वर्जित जो सूत उत्पन्न हुए हैं उनकी ब्रह्मा की आज्ञा से पुराण प्रवचन वृत्ति (आजीविका) निश्चित की गयी॥१॥

तदनन्तर पुराणार्थविशारद व्यासजी ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि के सहित पुराणसंहिता की रचना की॥१॥

रोमहर्षण सूत व्यास जी के प्रसिद्ध शिष्य थे। महामुनि व्यास जी ने उन्हें पुराणसंहिता का अध्ययन कराया॥२॥

उन सूतजी के सुमति, अग्निवर्या, मित्रयु, शांशपायन, अकृतव्रण और सावर्णि— ये छः शिष्य थे॥३॥

काश्यपः संहिताकर्ता सावर्णिः शांशपायनः।
लोमहर्षणिका चान्या तिसृणां मूलसंहिता॥४॥ ३.६.१८

(काश्यप संहिता—सावर्णि संहिता—शांशपायनसंहितानां मूलभूता संहिता लोमहर्षणकृता। वि.पु. ३ अंशे, ६ अध्याये १६-१९ श्लोकः)। प्रथमं व्यासः षट् संहिताः कृत्वा मत्पित्रे रोमहर्षणाय प्रादात् तस्य च मुखादेते त्रय्यारुण्यादयः एकैकां संहितामधीयन्त। एतेषां षण्णां शिष्योऽहं (उग्रश्रवाः सूतः) ताः सर्वाः समधीतवान्॥

(भाग. १२ स्कं., ७ अध्याय ५ श्लोक टीका श्रीधरः।)

२ सुमतिः   १ अग्निवर्चाः
त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः।
शिंशपायन हारीतौ षड् वै पौराणिका इमे॥४॥

अधीयन्त व्यासशिष्यात् संहितां मत्पितुर्म्मुखात्।
एकैकामहमेतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम्॥५॥

काश्यपगोत्रीय अकृतव्रण सावर्णि और शांशपायन—ये तीन संहिताकर्त्ता हैं। उन तीनों संहिताओं की आधार एक लोमहर्षण की संहिता है॥४॥ (विष्णु पुराण ६-३, १५-१८)

(काश्यप संहिता, सावर्णि संहिता, शांशपायन संहिता की मूलभूत संहिता लोमहर्षण द्वारा रचित संहिता है। विष्णु पुराण ३ अंश ६ अध्याय १६-१९ तक) पहले व्यास ने छः संहिताओं की रचना कर मेरे पिता रोमहर्षण को दी और उनके मुख से इन त्रय्यारुणि आदि ने एक-एक संहिता का अध्ययन किया। इन छओं के शिष्य मैंने (उग्रश्रवा सूत ने) उन सब संहिताओं का अध्ययन किया। (भाग १२ स्क ७ अध्याय ५ श्लोक टीका श्रीधर कृत)

त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, शांशपायन और हारीत इन छः पौराणिकों ने व्यास के शिष्य मेरे पिता के मुख से एक-एक संहिता का अध्ययन किया। इनके शिष्य मैंने सभी का अध्ययन किया॥४-५॥

१ २ ३
काश्यपोऽहं च सावर्णिः रामशिष्योऽकृतव्रणः।
अधीमहि व्यासशिष्याच्चत्वारो मूलसंहिताः ॥६॥

(भाग १२ स्कं. ७ अ. ४-६ श्लो.)

प्राप्यव्यासात् पुराणादि सूतो वै लोमहर्षणः।
सुमतिश्चाग्निवर्चाश्च मित्रायुः शांशपायनः॥

कृतव्रणोऽथ सावर्णिः षट् शिष्यास्तस्य चाभवन्।
शांशपायनादयश्चक्रुः पुराणानां तु संहिताः॥

(अग्निपुराणम्)

॥ इतिप्रकारान्तरेण पुराणावतारः॥

॥ इति पुराणनिर्म्माणाधिकरणम्॥

✦✦✦

मैंने, काश्यप, सावर्णि, राम शिष्य अकृतव्रण इन चारों ने व्यास के शिष्य लोमहर्षण से मूल संहिता का अध्ययन किया। (भाग १२ स्क. ७ अ. ४-६ श्लोक)

सूत लोमहर्षण ने व्यास से पुराण आदि का ज्ञान प्राप्त किया। उनके सुमति, अग्निवर्चा, मित्रयु, शांशपायन, अकृतव्रण और सावर्णि—ये छः शिष्य हुए। शांशपायन आदि ने पुराणों की संहिताओं का निर्माण किया।

यह है प्रकारान्तर से प्रतिपादित पुराण-अवतार।

॥ पुराण निर्माणाधिकरण पूर्ण॥

✦✦✦

विद्यावाचस्पति **पण्डित मधुसूदन ओझा** वेद के स्वतन्त्रप्रज्ञ, समीक्षणशिरोमणि विद्वान् थे। उन्होंने वेदार्थ के सर्वथा अभिनव चिन्तन का राजमार्ग प्रस्तुत किया है। वेद तथा ब्राह्मणग्रन्थों के अन्तःसाक्ष्यों से वैदिक तत्त्वों की विवेचना करने की उनकी पद्धति प्राचीन होते हुए भी जिस विधि से प्रस्तुत की गयी है सर्वथा विलक्षण प्रतीत होती है।

यहाँ उनकी पुराणदृष्टि को प्रमुख रूप से बताने का यत्न है जिससे इस लघुकाय किन्तु असाधारण वैशिष्ट्य से पूर्ण ग्रन्थ को सरलता से समझा जा सके।

सर्वप्रथम वे यह चौंकाने वाला तथ्य सामने रखते हैं कि ब्रह्माण्डपुराण नाम का एक वेद था। यह ऐसा ही नाम है जैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद नाम हैं।

ब्रह्माण्डपुराण वेद उस काल की रचना है जब अनेक मन्त्रों और ब्राह्मणों का भी आविर्भाव नहीं हुआ था। स्पष्टीकरण तथा प्रामाणिकता के लिए वे शतपथ ब्राह्मण का प्रघट्टक 'ऋग्वेदोयजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गि-रस.....व्याख्यानानि' उद्धृत करते हुए बताते हैं कि यहाँ आया 'पुराण' नाम इस 'ब्रह्माण्ड पुराण' वेद को ही बना रहा है। यह पुरावृत्त परम्परा को बताने वाला है साथ ही सृष्टि विद्या सम्बन्धी विचार भी देता है अतः इसका यह 'ब्रह्माण्डपुराणवेद' नाम है।

अपने इसी विचार को वे मत्स्यपुराण के उद्धरण से भी स्पष्ट करते हैं जहाँ बताया गया है कि ब्रह्मा ने सर्वप्रथम सभी शास्त्रों के पूर्व पुराण का स्मरण किया तदनन्तर वेदों का उच्चारण किया। यह पुराण शतकोटि विस्तार वाला था। बृहन्नारदीयपुराण द्वारा तो वे उस पुराण का नाम भी 'ब्रह्माण्ड पुराण' बता देते हैं। यह ब्रह्माण्ड पुराण ही कालान्तर में पुराण के 18 प्रतिपाद्य विषयों के आधार पर 18 महापुराणों के रूप में आया। इन 18 महापुराणों में अन्तिम का नाम ब्रह्माण्ड पुराण है। यह बताकर वे यह बता देना चाहते हैं कि यह 'ब्रह्माण्डपुराण' पुराण है तथा यह जिससे प्रकट हुआ है वह 'ब्रह्माण्डपुराण' वेद है। इस प्रकार दोनों का अन्तर स्पष्ट है।



पण्डित मधुसूदन ओझा शोध-प्रकोष्ठ

संस्कृत-विभाग

जयनारायण व्यास-विश्वविद्यालय, जोधपुर

क्रम सं.	प्रकाशित ग्रन्थमाला	सम्पादक	मूल्य
1.	वर्णसमीक्षा	डॉ. सत्यप्रकाश दुबे	120.00
2.	पितृसमीक्षा	डॉ. ए.एस. रामनाथन डॉ. पद्मधर पाठक	100.00
3.	अपरवादः	डॉ. दयानन्द भार्गव	65.00
4.	व्योमवादः	डॉ. दयानन्द भार्गव	100.00
5.	आवरणवादः	डॉ. दयानन्द भार्गव	105.00
6.	इन्द्रविजयः	डॉ. कलानाथ शास्त्री	390.00
7.	वेदधर्मव्याख्यानम्	डॉ. दयानन्द भार्गव	250.00
8.	स्मार्तकुण्डसमीक्षाध्यायः	डॉ. रामकृष्ण व्यास	180.00
9.	अम्भोवादः	डॉ. दयानन्द भार्गव	170.00
10.	कादम्बिनी	डॉ. गणेशीलाल सुथार	340.00
11.	महर्षिकुलवैभवविमर्शः	डॉ. गणेशीलाल सुथार	70.00
12.	श्रीमद्भगवद्गीताविज्ञानभाष्यम् (प्रथमं रहस्यकाण्डम्)	डॉ. गणेशीलाल सुथार	200.00
13.	अत्रिख्यातिः	डॉ. सत्यप्रकाश दुबे	470.00
14.	दशवादरहस्यम्	पं. अनन्त शर्मा	165.00
15.	श्रीमद्भगवद्गीताविज्ञानभाष्यम् (द्वितीयं शीर्षककाण्डापरपर्यायं)	डॉ. नरेन्द्र अवस्थी	470.00